कर मग्न हो गये । अपनी अनुभूतियों का वर्णन जो उन्होंने किया-वही आज गीत-गोविन्द के रूप में उपलब्ध है । धीर-समीर घाट पर लीला वर्णन करते हुए वे एक स्थान पर कह रहे हैं -

धीरसमीरे यमुनातीरे वसति वने वनमाली ।
गोपीपीनपयोधरमर्दन चञ्चलकरयुगशाली ॥

(श्रीगीत गोविन्द)

श्रीयमुना का सुरमणीय पुलिन, उसी के निकट स्थित सघन कुञ्जें, रसीले युगल की मधुर केलि की परिचायक हैं । वे नित्य ही इन वन निकुञ्जों में आ, मद-मत्त हो जाते हैं । इन निभृत निकुञ्जों का वर्णन करना अत्यन्त कठिन है । युगल की इच्छानुसार, ऋतुऐं इन निकुञ्जों में छा जाती हैं, केलि के अनुरूप सुहावना मौसम प्रकट हो जाता है; उसी के अनुरूप लता-वृक्ष तथा पुष्प प्रकट हो वन्य शोभा को और, और सरसा देते हैं । यह सब वृन्दा-देवी के संकेत से ही होता है । वहाँ रस में मग्न हुए प्रिया-प्रियतम अपनी प्रणयिनी बालाओं के साथ रस-विहार, रङ्ग-विहार तथा अनङ्ग विहार में मत्त हो जाते हैं ।

इसी रसमय घाट पर स्थित सघन निकुञ्ज में सुकोमल किसलय दलों के सज्जित शैय्या पर प्रिया की बाट जोह रहे प्रियतम द्वारा प्रेषित सखी ने किशोरी श्रीराधा से जाकर कहा, "हे सखी ! प्रियतम श्रीकृष्ण ने जिस निकुञ्ज में तुम्हारे साथ पहले रसमय केलि विहार किया था, जो मदन केलि की महातीर्थ स्वरूप हो गयी, उसी निकुञ्ज में वे तुम्हारे ध्यान में बैठे, प्रतीक्षा रत हैं । हे सखी ! वे मदन महीपति के मद-मर्दन हेतु उचित वेष धारण कर वहाँ विराजमान हैं । हे नितम्बिनी ! तुम अधिक विलम्ब न करो तथा शीघ्र चलो । इसी तट पर वे तुम्हारे आगमन की बाट जोह रहे हैं । तुम्हारा नाम लेकर तुम्हें ही बुलाने हेतु उन्होंने मुझे तुम्हारे पास भेजा है । तुम्हें यदि गुरुजनों से संकोच होता हो तो अपने नूपुरों को उतार दो । (वे घट-घट व्यापी भगवान श्रीकृष्ण हमारे प्रियतम हैं, जीवन सर्वस्व हैं) और धीरे-धीरे मेरे साथ चलो ।

हे सखी यह चरण नूपुर रसकेलि कलह में निश्चय ही शत्रु तुल्य कार्य करते हैं । अतः तुम इनका परित्याग कर यमुना तटवर्ती सघन निकुञ्ज में अपने प्राण-प्रेष्ठ की कामना पूर्ति हेतु चलो ।"

सखी की हितकर वाणी सुन किशोरी श्रीराधा अधिक धैर्य धारण न कर सकीं और अपने उन नव-घन-कान्ति-विनिन्दक, सौन्दर्य तथा लावण्य मूर्ति रसघन किशोर के पास जा पहुँची । रस की उद्दाम केलि प्रवहमान हुई । प्रतीक्षातुरी का बाँध टूट चुका था । रस की अथाह राशि किशोरी कभी नव

जलधर घनश्याम में विलसित सौदामिनी सी दीखीं और कभी सौदामिनीं में नव जलधर घनश्याम को विश्राम करते देखा।

निविड़ निकुञ्ज की सुरस केलि में प्रियतम की चञ्चलता तथा चपलता सीमा में न रही। त्रिविध समीर ने वातावरण में और, और सरसता भर दी और फिर प्रणय समुद्र में हिलोरें उठीं किसी गम्भीर रस राशि का अतापता पूछतीं।

ऐसी ही निभृत निकुञ्ज केलि के गाम्भीर्य में समीरण भी कुछ श्रमित सी हो गई। रस में पगी प्रियतम की रसकेलि-कणों के भार को वहन करने से शिथिल हो गई, धीर हो गई। अतः यह स्थली 'धीर-समीर घाट' के नाम से विख्यात हो गई।

वंशीवट

दशाब्दकृष्णपादांकलांछिताय नमो नमः।
वंशीरवसमाकीर्ण वंशीवट नमोऽस्तुतेः ॥[1]

(पद्म पुराण)

चिर प्रतीक्षित रास रात्रियों का प्रारम्भ हुआ। इनकी प्रतीक्षा में आतुर यह बालाएँ क्षण-क्षण गिनने लगीं। हृदय की ऊहा-पोह, मन की बेचैनी तथा उर की धड़कनों ने आशा प्रतीक्षा को आश्वासन दिया। यह लो शरद की अभीप्सित रात्रि का प्रारम्भ हुआ।

आकाश में चन्द्र अपनी सम्पूर्ण कलाओं सहित उदित हो गया। चारों ओर सुशीतल चाँदनी छिटक गई। सम्पूर्ण प्रकृति को अपनी ज्योत्सना से आप्लावित कर चन्द्रकिरणों ने यमुना पुलिन का अभिषेक किया। वन्य प्रकृति का आतिथ्य स्वीकार कर चन्द्र किरणें ठिठक-सी गईं। लगा मानो सर्वत्र धवल वस्त्र ही बिछा दिया हो। ऐसे में प्रियतम वंशीवट के नीचे आ विराजे। उन्होंने अपनी चिरसंगिनी मुरलिका को अपनी फेंट से निकाल प्रेम मंत्र फूंका। उस प्रणय मंत्र ने यावत प्रकृति में गूंज मचा दी। सम्पूर्ण प्रकृति मानों चौंक-सी गई। यह मंत्र क्या था मानो जादू ही था। इन ब्रज बावरियों के आकुल-व्याकुल हृदय का बिम्ब-प्रतिबिम्ब ही था। वंशी में मधुर स्वर प्रवहमान था-

चलहि राधिके सुजान तेरे हित गुण निधान,
रास रच्यो कुंवर कान्ह तट कलिन्द नन्दिनी।
निर्तत युवति समूह राग रंग अतिकुतूह,
बाजत रस मूल मुरलिका आनन्दिनी।

1. हे दस वर्ष अवस्था प्राप्त श्रीकृष्ण के चरण-चिन्हों से अङ्कित (स्थल) आपको नमस्कार है। हे वंशी रव से व्याप्त वंशीवट ! आपको नमस्कार है।

वंशीवट निकट जहाँ परम रम्य भूमि तहाँ,
सकल सुखद मलय बहे वायु मन्दिनी ॥

गोपिकाओं को बरबस अपनी ओर आकर्षित किया इस प्रणय गीत ने। किशोरी श्रीराधा तथा सखीवृन्द ने सुनी वह मनहर ध्वनि। सुनकर वे विवश-पर वश हो गईं-

निशम्य गीतं तदनङ्गवर्धनम्
ब्रजस्त्रियः कृष्णगृहीतमानसाः ।
आजग्मुरन्योन्यमलक्षितोद्यमा
स यत्र कान्तो जवलोल कुण्डलाः ॥

(श्रीमद्भागवत 10/29/4)

घर के काम काज उन्हें विस्मृत हो गये। वे धावित हुईं। श्रृंगार करने की सुधि ही किसे थी। किसी से कुछ भी कह न सकीं। यह अनंग वर्धक गीत, हृदय को झंकृत कर देने वाला स्वर, प्रिय मिलन लालसा-वश प्रणयातुरी लगा देने वाला वंशी स्वर, हृदय को कुरेदता सा, आकुल-व्याकुल करता-सा, हिलोरता झकझोरता-सा विवश-परवश करने लगा।

वे कहाँ जा रही थीं, इस सबकी सुधि भी इन्हें न थी। नीले, पीले, हरे, लाल, केशरिया तथा गुलाबी रङ्गों के लहँगे पहने वे भागी जा रही थीं। उनके वसनांचल फहरा रहे थे, कर्ण कुण्डल हिल रहे थे। चरणों के नूपुर, उनकी प्रणयातुरी का परिचय दे रहे थे। अपनी जीवन निधि को, अपने प्राण सर्वस्व को सामने पा वे धन्या हो गईं।

इन बालाओं ने ब्रज की शोभा निहारी। वहाँ भाँति-भाँति के पुष्प खिले हुए थे। जुही, चमेली, केतकी कुन्द तथा मन्दारादि के पुष्पों की भीनी सुगन्ध से सौरभान्वित, त्रिविध समीरण प्रवहमान थी। सारा ही वातावरण मादक था, सरस था। यह यमुना पुलिन, इन ब्रज बालाओं के नूपुर रव से गुञ्जायमान हो गया। श्रीयमुना की लोल लहरियों ने उमग कर प्रियतम के संस्पर्श की कामना का किञ्चित् संकेत दिया। ओह ! चन्द्रिका स्नात वह रात्रि, अपनी प्रणयोन्मादिनी बालाओं सहित प्रियतम श्यामसुन्दर, सभी कुछ सुन्दर था, सरस था। इस शोभा को निहार अनंग भी बौराया-सा खड़ा रह गया। प्रियतम बोले-

दृष्टं वनं कुसुमितं राकेश कर रञ्जितम्।
यमुनानिल लीलैःजत्तरुपल्लव शोभितम् ॥

(श्रीमद्भागवत 10/29/21)

तुमने वन की शोभा निहार ली है, भाँति-भाँति के रङ्गों वाले सुगंधित पुष्पों की सुगन्ध से सम्पन्न, पूर्ण चन्द्रमा की किरणों से स्नात तथा यमुना जल का

स्पर्श पाकर प्रवहमान पवन द्वारा हिलोरित, वृक्षों से विभूषित श्रीवृन्दावन की शोभा भी निहार ली है-अतः अपने-अपने घरों को लौट जाओ। परन्तु श्रीकृष्ण की रूप मधुरिमा का, उनके चारु मुख कमल का, उस पर घिरकर आई स्निग्ध कच लटों का, मधुरोज्ज्वल कपोलों के सौन्दर्य का पानकर तथा मधुर मुस्कान में आसक्त श्रीकृष्ण के धर्मोपदेश के भी पालन करने में असमर्थ ये बालाऐं अपने पग लौटा न सकीं।

अपनी प्रेम स्वरूपा इन बालाओं के साथ घिरे हुए श्रीकृष्ण चन्द्रमा के समान शोभायमान हो रहे थे। वे ब्रज बालाओं को विभिन्न रस चेष्टाओं द्वारा सुख प्रदान करते रहे। गोप-रमणियों सहित उनक यह विहार-विलास दिव्य तथा अलौकिक था-अहा कैसी थी वह शोभा -

उपगीयमान उद्गायन् वनिताशतयूथपः ।
मालां विभ्रद् वैजयन्तीं व्यचरन्मण्डयन् वनम् ॥

(श्रीमद्भागवत 10/29/44)

उस समय ब्रज रमणियाँ अपने प्रियतम श्रीकृष्ण के गुण तथा लीला आदि का मधुर स्वर से गान करने लगीं; उधर श्रीकृष्ण भी उच्च स्वर से इन बालाओं के प्रेम और सौन्दर्य के गीत गाने लगे। ब्रज सुन्दरियों के सैंकड़ों यूथों के नायक श्रीकृष्ण वैजयन्ती माला धारण किये हुए श्रीवृन्दावन की शोभा बढ़ाते हुए विचरण करने लगे।

यह ब्रज सुन्दरियाँ श्रीकृष्ण लीला में मत्त हो गईं। प्रियतम श्रीकृष्ण की स्मित, जिसने उन्हें अपने पाश में आबद्ध कर रखा था, उर पर विराजित वनमाल, जिसने प्रणय स्पर्धा की स्मृति से आलोड़ित कर रखा था, चञ्चल चितवन, जिसकी सरसता ने, मन्द मुस्कान जिस विषामृत का पान कर वे जीवन धारण किये हुए थीं, एक ही समय में विष तथा अमृत-यह प्रेम के इस पावन सम्बन्ध में ही सम्भव है, वे सब इन्हीं रस तरङ्गों में उच्छलित होने लगीं, तरंगित होने लगीं।

अनेक वाग्विनोदों, मधुर रस चातुरी, प्रणय पगी छेड़-छाड़, रस गाम्भीर्य की उत्तुंग हिलोरों में डूबते-उतरते युगल तथा उनकी अपनी, बहुत अपनी यह ब्रज बालाऐं, उनसे सुरस वार्ता, रास-विलास ! इन सभी उपक्रमों से सम्पूर्ण प्रकृति प्रफुल्लित हो गई।

श्रीयमुना के रमणीय तट पर रास रस की धूम मच गई। जिन जिन महामनाओं ने देखा, वर्णन करते करते हार गए। उसी में योग दिया भक्तिमती ऊषा बहन जी ने-

रास रस उल्लास थिरक्यो,
तरणि तनया के पुलिन पै ।
हास की छवि वदन पै ज्यौं,
चन्द्रिका छिटकी नलिन पै ॥
युग युगों का प्यार मानों
मूर्त हो थिरका विपिन में ।
राग रंग अभंग अनुपम
नृत्य बन ठुमका विजन में ॥
कामिनी हरि संग शोभित
दामिनी ज्यों नील घन में,
देखिकै फूले लता द्रुम
चन्द्रमा विहँसा गगन में ।
राग बन अनुराग छलका,
नूपुरों की छम छनन में ।
हाव भाव विलास वैभव
बह चला उन्मद हँसन में ॥

(ब्रज विभव की अपूर्व श्री भक्तिमती ऊषा बहन जी ग्रन्थ से साभार)

श्रीयमुना का रमणीय पुलिन देख वे किशोरियाँ -

नद्याः पुलिनमाविश्य गोपीभिर्हिम बालुकम् ।
रेमे तत्तरलानन्दकुमुदामोद वायुना ॥

(श्रीमद्भागवत 10/29/45)

अनन्तर गोप रमणियों के साथ श्रीकृष्ण ने यमुना पुलिन पर पदार्पण किया । वह पुलिन यमुनाजी की तरङ्गों के स्पर्श से शीतल हो रहा था । कुमुदिनी की भीनी गन्ध ले मन्द वायु द्वारा परिसेवित था । धवल तथा सुशीतल चाँदनी से संयुत था । ऐसे सुरमणीय पुलिन पर भगवान अपनी स्वरूपभूता गोपियों के साथ क्रीड़ा करने लगे ।

रास रस की सम्पूर्ण चेष्टाओं, केलि कलाओं, दिव्य तथा अलौकिक आनन्द को प्राप्त इन युवति वृन्द की अभीप्सित रात्रियों में उच्छलित रस कणों को समेटे आज भी यह स्थली धन्या हो रही है ।

यहाँ वंशीवट विहारी ठाकुर विराजमान हैं । चतुः सम्प्रदाय के आचार्य श्री के चित्र अङ्कित हैं । इस वट के नीचे वंशीवादन हुआ, इसी से यह स्थली 'वंशीवट' कही जाने लगी है ।

श्रीगोपेश्वर महादेव

तथाऽस्तु चोक्त्वा भगवान वृन्दारण्ये मनोहरे ।
कालिन्दी निकटे राजन्रासमण्डल मण्डिते ॥
निकुञ्ज पार्श्व पुलिने वंशीवट समीपतः ।
शिवोऽपि चासुरि मुनिर्नित्यं वासं चकार ह ॥

(श्रीगर्ग संहिता 2/26/31-32)

भगवान शिव कैलाश पर श्रीकृष्ण के ध्यान में मग्न थे । रास की वह महारात्रि आ पहुँची । अपने आराध्य श्रीकृष्ण, स्वामिनी श्री राधा तथा उन्हीं की कायव्यूह स्वरूपा इन ब्रज-बालाओं के साथ रासलीला के दर्शन की इच्छा से शङ्करजी वृन्दावन में पधारे । गोलोकवासिनी अत्यन्त सुन्दरि किशोरियों ने जो द्वार-पालिकाऐं बन रास-मण्डल के प्रहरी का कार्य कर रहीं थीं, "इस एकान्त रास-मण्डल में एकमात्र श्रीकृष्ण ही पुरुष हैं" यह कह वैष्णवाग्रगण्य श्रीशङ्कर जी को भी रास-मण्डल में जाने से रोक दिया तथा निवेदन किया, यदि आपकी श्रीकृष्ण दर्शन करने की तीव्र लालसा है तो मानसरोवर में स्नान करें; वहाँ शीघ्र ही गोपी स्वरूप की आपको प्राप्ति होगी, तब आप रास-मण्डल के भीतर जाने के सर्वथा अधिकारी हो सकोगे ।

ऐसा ही हुआ । मानसरोवर में स्नान करके पशुपतिनाथ आदि गुरु श्रीशङ्कर जी रासमण्डल में पहुँचे । कोटि-कोटि चन्द्रमाओं की सुशीतल चाँदनी से नहाया-सा, प्रफुल्लित लता-विटपों के दिव्य सुगन्धित त्रिविध समीरण से दिव्योन्मादी रासमण्डल वहाँ विराजित प्रियतम श्यामसुन्दर उनकी प्राणाराध्या श्रीराधा तथा निज स्वरूपभूता इन बालाओं का दिव्य दर्शन पा वे धन्य हो गये ।

उन्होंने मधुर स्तुति की और वृन्दावन में श्रीकृष्ण चरण सन्निधि में सदा ही वास हो ऐसी प्रार्थना की । भगवान श्रीकृष्ण ने उनकी इस कामना का अनुमोदन कर दिया ।

तभी से भगवान शङ्कर वंशीवट के समीप यमुना तटवर्ती निकुञ्ज में निवास करते हैं । ब्रज के रसिक चार महादेवों में प्रमुख एक इस स्वरूप में विराजमान हैं ।

श्रीश्रीमन्महाप्रभु वल्लभाचार्यजी की बैठक

यहाँ श्रीमन्महाप्रभु वल्लभाचार्यजी की बैठक है । यहाँ आपने ब्रज के दिव्य दर्शन कराये हैं । किसी वैष्णव के स्नान के बिना प्रसाद ग्रहण न करने पर प्रसाद का महत्त्व समझाते हुए आपने उसे शुचि-अशुचि का बिना विचार किये ही प्रसाद ग्रहण कर लेना चाहिए-इस सिद्धान्त को समझाया तथा वृन्दावन का माहात्म्य समझाया ।

ज्ञानगुदड़ी

गोपियों की ज्ञान चर्चा की यह स्थली ज्ञानगुदड़ी नाम से विख्यात है ।

श्रीजगन्नाथ प्रसादजी भक्तमाली

संवत १९५५ की माघ कृष्णा दशमी को मध्य प्रदेश के गुना जिले के अन्तर्गत चाचोड़ा ग्राम में आपका जन्म हुआ । वही आपने अध्ययन किया तथा अध्यापन कार्य करते रहे । एक समय आप श्रीवृन्दावन पधारे तथा बाबा रामकृष्णदासजी के दर्शन कर कृत-कृत्य हो गये । उन्हीं की प्रेरणा से आपने टटिया स्थान के महन्त श्रीभगवानदासजी से दीक्षा लेकर वैष्णव जगत को कृतार्थ कर दिया ।

इनके 'भक्तमाली' पुकारे जाने के पीछे एक बहुत ही सरस इतिहास सम्बद्ध है, उनके श्रीमुख से सुना इतिहास हम यथावत नीचे उद्धृत कर रहे हैं-

एकबार इनसे एक उच्च-कोटि की साधु बहिन ने, बहुत ही स्नेह तथा आदर सहित आग्रह कर निवेदन किया-"बाबा ! आप अपना कोई अन्तरङ्ग अनुभव सुनाइये । सुना है आपको लक्ष्मणजी, रामजी तथा सीताजी ने दर्शन दिये-वह प्रसङ्ग क्या है, कृपया कहिये ।"

अपनी वही भोली-भाली भाषा में बहुत अनुनय-विनय करने पर 'भक्तमालीजी' ने छोटे-छोटे अधूरे से वाक्य बोलते हुए कहा था, "एक दिन स्वप्न में श्री राम जी, सीताजी तथा लक्ष्मणजी एक स्थान पर बैठे थे । श्रीरामजी, लक्ष्मणजी की गोद में सिर रखे लेटे थे । दूर से किसी की पग ध्वनि सुनकर रामजी ने अपना शीश उठाकर लक्ष्मणजी से पूछा कौन है ? लक्ष्मणजी ने कहा, "वही, बड़ो भोरो सो, अपनो भक्तमाली है ।" यह बात तंद्रा की थी । श्रीहरि बाबा के यहाँ कभी-कभी श्रीजगन्नाथ प्रसादजी कथा कहने जाया करते थे । इन्होंने मन में विचार किया कि यदि कोई संत आज इसी नाम से मुझे पुकारेंगे तो यह बात ठीक समझूँगा । भोर होते ही श्रीहरि बाबा का भक्तमाल सुनने का निमन्त्रण मिला । जब पण्डितजी कथा कहने वहाँ पहुँचे तो श्रीहरि बाबा ने सर्वप्रथम 'भक्तमाली' कहकर सम्बोधन किया । तभी से आप वैष्णव जगत में 'भक्तमाली' नाम से जाने, जाने लगे ।

श्रीभक्तमालीजी का भोलापन तो देखते ही बनता था । ये इतने भोले थे-कि इनका चरित्र बड़ा ही स्वच्छ तथा लोकप्रिय रहा । एकबार इनके यहाँ कुछ साधु पधारे, इन्होंने प्रसाद के लिए उनसे आग्रह किया । ये स्वयं कथा

कहने जा रहे थे। उन साधुओं से घर चलने का आग्रह कर श्री भक्तमालीजी कथा कहने तथा अन्य सामग्री की व्यवस्था हेतु चले गये। साधु इनके घर की ओर चल दिये। आप बाजार से सीधा, सामग्री लेकर घर की ओर जा रहे थे तो वे साधु रास्ते में मिले। इन्होंने पूछा, "कहाँ जा रहे हैं महाराज ! प्रसाद पाकर ही जाना होगा।" श्रीभक्तमालीजी की पत्नी बड़े तेज स्वभाव की थीं। जब वे साधु घर गये तो उन्होंने प्रसाद की बात कही, मैया तेज होकर बोलीं, "पण्डित तो गया चूल्हे में, तुम जाओ भाड़ में।" इन्होंने यही बात पण्डितजी से कही और चलने लगे। पण्डितजी बोले, "महाराज वाने तो साँची कही है, जब ते आपकूं प्रसाद पायबे को निमन्त्रण करचो, याही सोचतो रह्यो अमुक चीज लै जाऊँगो, प्रसाद बनैगो।" "महाराज वह तो अन्तर्यामिनी है।" आप बुरा न मानें कृपया मेरे साथ चलें।

इन्हें कभी गुस्सा नाम को भी नहीं आता था। जैसे-तैसे मान-मनुहार कर साधुओं को ले पण्डितजी घर आ गये। प्रसाद बना, भोग लगा, पंगत बैठी। पण्डितजी जल लेने कुंए पर गये, तो इनकी पत्नी पुनः वहीं गई और उन साधुओं से बोली, "जो यहाँ बैठकर खाय, 'गाय' खाय।" अब तो साधुओं का धैर्य छूट गया। वे उठकर चलने को खड़े हो गये। इधर पण्डित जी आ पहुँचे। यह दृश्य देखकर वे स्तब्ध रह गये तथा पूछा। उन साधुओं ने सारी बात ज्यों की त्यों कह दी। सुनकर पण्डितजी बोले, "भैयाओ ! वह तो बड़ी समझदार है। परम वैष्णवता की बात वाने कही है। पंगत ते पहले कीर्तन, नाम होनो चाहिये। सो वाको अभिप्राय यही हो कि जो इस आँगन में बैठ के खाय, तो गा, गा, के खाय' अतः आओ कछु हरि नाम करके ही प्रसाद ग्रहण करें।" उनकी पत्नी यह सब सुनकर बहुत ही द्रवित हो गईं तथा उसका मन ही परिवर्तित हो गया।

श्रीभक्तमालीजी, बड़े ही लोकप्रिय थे। सभी वैष्णव सम्प्रदाय उनके प्रति आदर भाव रखते थे। प्रिया-प्रियतम उनके लिए प्रत्यक्ष थे। वे उच्च कोटि के सन्त थे। उनके अन्तिम समय का दृश्य, उनका विलक्षण चरित्र, एक नक्षत्र बना वैष्णव समाज में चमक रहा हैं।

आज तक पुराणों और शास्त्रों में भी कोई घटना ऐसी नहीं देखने को मिली जहाँ किसी मृतक देह का, स्नान का जल लोगों ने पान किया हो। श्रीभक्तमालीजी के स्नान आदि का जल, उन्हें धारण कराये वस्त्र तक प्रसादी रूप में अनेक श्रद्धालुओं ने ग्रहण किये तथा सम्मान सहित अपने यहाँ ले गये। इससे अधिक लोकप्रियता का और क्या उदाहरण हो सकता है ?

भगवत्प्राप्ति कर आप भाद्र शुक्ला पञ्चमी संवत २०४१ में सदा-सदा के लिए प्रिया-प्रियतम की सेवा में प्रवेश पा गये ।

जगन्नाथ घाट

लगभग सवा दो सौ वर्ष पुरानी घटना है, श्रीवृन्दावन में श्रीयमुना पुलिन पर श्रीहरिदासजी नाम के एक रामानन्दी महात्मा रहते थे ।

भगवद्दर्शन की लालसावश वे दीन होकर अहर्निश नाम लेते तथा अपने इष्टदेव को पुकारते रहते । सहसा, एक दिन मधुर मुस्कान, घुंघराले केश, मणिमण्डित दिव्य मुकुट, कर्णों में कुण्डल झिलमिला रहे थे जिनके, ऐसे एक श्याम सुकुमार बालक को देख वे प्रसन्नता में भर गये । उस साँवले सुकुमार ने श्रीहरिदासजी से जगन्नाथपुरी जाकर, श्रीजगन्नाथ भगवान के श्रीविग्रह ले आने के लिए आग्रह किया ।

श्रीहरिदासजी पुरी चले गये । पुजारियों से सारी घटना कह सुनाई । राजा से भी यह सारी घटना उन्होंने कही । वहाँ पहले से चली आ रही परम्परा को तोड़ना राजा को रुचिकर नहीं लगा, परन्तु यह तो भगवद्विधान था । श्रीजगन्नाथजी ने स्वप्न में राजा से वृन्दावन पधारने की बात स्पष्ट कह दी । राजा इन महात्मा से क्षमा-याचना करने लगे ।

अभिषेक के अनन्तर श्रीजगन्नाथजी, श्रीबलदाऊजी तथा श्रीसुभद्रा जी को विराजमान करा, सम्पूर्ण व्यवस्था सहित महात्माजी को वृन्दावन के लिए विदा किया । वे जगन्नाथपुरी में विराजमान स्वरूप ही यहाँ श्री वृन्दावन पधारे तथा जगन्नाथ मन्दिर में अद्यावधि विराजमान हैं ।

इनके बड़े ही विलक्षण तथा अद्भुत चरित्र प्रसिद्ध हैं ।

लगभग पच्चीस वर्ष पहले की बात है कि एक मैया, श्रीजगन्नाथजी को तुलसी समर्पित कर रही थी । श्रीजगन्नाथजी प्रकट हो गये । उनका मुख मण्डल तेजोमय हो गया । इनकी श्वासोच्छ्वास अनुभव कर वह मैया मूर्छित होकर गिर पड़ी । बहुत देर में होश हुआ ।

एकबार मन्दिर में एक छड़ी पाई गई । वह बहुत चमकीली थी । दिव्य ही लगती थी । उसकी पूजा की जाने लगी । जिस दिन से वह छड़ी मन्दिर में मिली-श्रीजगन्नाथजी का वैभव बढ़ने लगा । एक दिन माताजी ने श्रीयमुना के तट पर उस छड़ी का षोडशोपचार पूजन किया । पूजनोपरान्त वह छड़ी चलने लगी तथा जाकर श्रीयमुनाजी में विलीन हो गई ।

श्रीजगन्नाथजी की ऐसी और भी कई दिव्य चमत्कार पूर्ण घटनाऐं प्रसिद्ध हैं ।

टटिया स्थान

अनन्य गुरुनिष्ठ श्रीरसिकदेवजी के चरित्र से कौन वैष्णव अनभिज्ञ होगा। इन्हीं के शिष्य हुए श्रीललितकिशोरीदेवजी जिन्होंने टटिया स्थान की सेवा प्रारम्भ की।

भदावर प्रदेश में चामिल नदी तट पर माथुर कुलोत्पन्न श्रीगङ्गाराम, जगन्नाथपुरी में स्वामी श्रीहरिदासजी की चर्चा सुन विभोर हो गये। श्री वृन्दावन आने पर इसी खोज में रहे कि कोई उसी रस की बात कहे। यह जिज्ञासा बनी रही। अन्ततः श्रीरसिकदेवजी के शिष्य हो गये, तथा श्रीललितकिशोरी नाम से विख्यात हुए। गुरुदेव ने ब्रज रस का उपदेश दिया, परन्तु इनकी आन्तरिक माँग कुछ और ही थी। प्रार्थना की, गुरुदेव ! आपकी कृपा से 'ब्रजरस' की अनुकम्पा अनायास ही हो गई-कृपया वह सब दीजिये जिसको स्वामीजी महाराज ने मुक्त कण्ठ से गाया है। कहते हैं कि श्री ललितकिशोरी देव जी निधिवन में लता-पताओं से लिपट-लिपटकर रोने लगे। जब श्री रसिकदेव जी को इस बात का पता चला तो उन्होंने अपने शिष्य को बुलवाया, तथा अपनी उपासना का सारा रहस्य समझाकर कहा -

षट आचारज तिनकी वाणी, राखी हुती छिपाय।
दई निकासि रासि निजधन की मनकी बात बताय॥

स्वामीजी महाराज से उपासना, मन्त्र तथा करुवा और गुदड़ी प्राप्त कर आप पहले तो श्रीवृन्दावन में विचरण करते रहे, पीछे यमुना पुलिन पर आकर विराजे। सेवक शिष्यों ने उसी स्थली को बाँस की टटिया लगाकर सुरक्षित कर दिया।

एक बार महाराज जयसिंह से किसी ने जाकर शिकायत की कि श्रीरसिकदेवजी न तो एकादशी व्रतादि रखते हैं और न आचार- विचार ही है। राजा ने पता लगाने के लिए अपना एक दूत भेजा। उत्सव का दिन था। एक ब्राह्मण एक हाँडी भर मिठाई लेकर आया तथा स्वामीजी की सेवा में रख दी। थोड़ी देर बाद एक ब्रजवासी ने सूखी रोटी लाकर दी स्वामीजी ने मिठाई बाँटकर सूखी रोटी प्रसन्नता पूर्वक ग्रहण कर ली।

श्रीललितकिशोरीदेवजी के जीवन वृत्त पर प्रकाश डालते हुए, श्रीगोस्वामी श्रीचन्दलालजी ने एक बहुत ही सुन्दर कवित्त लिखकर उनकी निकुञ्ज रसोपासना का सरस चित्रण किया है। उस कवित्त को हम नीचे उद्धृत कर रहे हैं :-

गङ्गाराम की बात मोपै कैसे कहिजात,
रसिक अनन्य प्यारे अति ही अमाने हैं।
स्वामी हरिदास जू की आस बनवास,

श्रीविहारिन विहारीजू के रूप में समाने हैं ।
काहू सौं न कहैं सुनें रहनि अनूठी रहें,
नित सुख लहें प्रेम बानि रस साने हैं ।
कृष्ण सो न सूझे भये तिन्हें इन खेंचि लये,
रस में छकाय दये जानै सोई जानै हैं ॥

(वृन्दावन प्रकाशमाला)

अपनी अनूठी रहनी में रत रहे, प्रिया-प्रियतम की रूप-माधुरी में अहर्निश पगे रहे, श्रीललितकिशोरीदेवजी महाराज ।

अपनी मोहिनी छटा से सहस्रों भावुक भक्तों का आकर्षण बने श्रीमोहिनीबिहारी ठाकुर स्वरूप स्वयं प्रकट ठाकुर हैं । कहते हैं डीग में खुदाई में प्राप्त यह श्रीठाकुर विग्रह स्वेच्छा से यहाँ विराजे हैं । इसी स्थान के अन्तर्गत श्रीरसिकविहारीजी, दाऊजी, प्राणवल्लभजी, दम्पति किशोरजी श्रीठाकुर स्वरूप विराजमान हैं ।

अलबेली प्रकृति, एकान्त तथा नीरव स्थली, पक्षियों के कलरव तथा मयूर काकली से गुञ्जायमान, अपनी सरसता का प्रसार करती सभी का आकर्षण बनी है ।

रमणरेती

भगवान श्रीकृष्ण के साथ विहार तथा विलास में मत्ता इन ब्रज-बालाओं को अपने सौभाग्य मद पर किञ्चित् गर्व हो गया । 'तत्सुखे सुखित्वं' की स्वरूपभूता इन बालाओं का गर्व केवल प्रियतम के सुख की कामना वश ही था । अतः

तासां तत्सौभगमदं वीक्ष्य मानं च केशवः ।
प्रशमाय प्रसादाय तत्रैवान्तरधीयत ॥[1]

(श्रीमद्भागवत 10/29/48)

वह गोप रमणियाँ तो सदा-सदा श्रीकृष्ण की क्रीत-दासी हैं- उनसे मान भी उन्हें सुख प्रदान करने के लिए ही करती हैं । प्रियतम श्रीकृष्ण के अभाव को सहन करना इन ब्रज युवति वृन्द के लिए कठिन हो गया । वे श्रीकृष्ण का अता-पता वृक्षों तथा वल्लरियों से पूछतीं, उनकी लीला माधुरी का आस्वादन करतीं उनकी खोज करने लगीं । अपनी ही आराधिका श्रीश्रीराधा के प्रणय गर्व को भी प्रियतम ने सहन नहीं किया । उन्हें छोड़ वे वहाँ से भी अन्तर्धान हो गये ।

1. इन ब्रज रमणियों के गर्व तथा अकस्मात उदित प्रणय अभिमान को शान्त तथा उन्हें और, और सुख प्रदान करने के लिए ही श्रीकृष्ण उन रमणियों के बीच में ही अन्तर्धान हो गये ।

सभी गोप बालाऐं पूर्व स्मृतियों में तन्मय तथा श्यामसुन्दर की स्मृति से अधीर हो गईं। इन बालाओं की अधीरता अधिक देर तक प्रियतम से सहन न हुई तथा वे -

तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमान मुखाम्बुजः ।
पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः ॥

(श्रीमद्भागवत 10/32/2)

उसी समय उन ब्रज सुन्दरियों के मध्य में से ही श्यामसुन्दर प्रकट हो गये। वे वनमाला तथा पीताम्बर धारण किये हुए मन्द-मन्द मुस्करा रहे थे। उनका वह रूप सौन्दर्य कामदेव के मन का भी मन्थन करने वाला था। उन्हें देख यह ब्रज-बालाऐं प्रफुल्लित हो गईं, तुरन्त उनके पास चली आईं। प्रेम का स्वभाव ही विचित्र है। किसी ने उनकी बाहू का स्पर्श पा अपनी चिर-पिपासा का शमन किया, कोई उनका पीताम्बर हाथ में ले किसी सरस स्मृति में खो गई, उनके कर कमल को हाथ में ले किसी ने अपनी प्रणयातुरी को किञ्चित् अभिव्यक्त किया, कोई एक टकटकी बाँध उनकी रूप मधुरिमा का पान करने लगी और आनन्द मग्न हो गई। प्रेम बावरी इन बालाओं ने अपनी-अपनी ओढ़नी बिछा दी और श्यामसुन्दर उस पर विराजमान हुए सभी को आनन्द प्रदान करने लगे।

सभाजयित्वा तमनङ्गदीपनं,
सहासलीलेक्षण विभ्रमभ्रुव ।
संस्पर्शनेनाङ्ग कृताङ्घ्रिहस्तायोः
संस्तुत्य ईष्यत्कुपिता बभाषिरे ॥

(श्रीमद्भागवत 10/32/15)

श्रीकृष्ण की रूप मधुरिमा का पान कर वे बालाएँ पूर्ण काम हो गईं, उनके मन में भगवत्प्रेम की आकांक्षा उद्दीप्त हो गईं, अपनी हास-विलास पूर्ण चेष्टाओं से प्रणय कोप का-सा अभिनय करती हुई श्रीकृष्ण सामीप्य पा आनन्द-विभोर हो गईं। इनकी सराहना करते हुए श्रीश्यामसुन्दर प्रेम भरे आवश्वासन देते हुए, कहने लगे -

एवं मदर्थोज्झितलोकवेद
स्वानां हि वो मय्यनुवृत्तयेऽबलाः।
मया परोक्षं भजता तिरोहितं
मासूयितुं मार्हथ तत् प्रियं प्रियाः॥

(श्रीमद्भागवत 10/32/21)

तुम लोगों ने मेरे लिए लोक मर्यादा को तिलाञ्जलि दे दी, स्वजनों का परित्याग कर दिया-अत: तुम्हारी मनोवृत्ति मुझ ही में प्रगाढ़ हो जाये, इसीलिए तुम्हारे प्रेम रस का उद्दीपन करता हुआ मैं यहाँ छिप गया था। उसके बाद वे सब बालाएँ प्रियतम सहित यमुना पुलिन पर आ गईं तथा रास-विलास में मग्न हो गईं। श्रीकृष्ण की प्रेयसी वे बालाएँ परस्पर मंडलाकार खड़ी हो गईं। ऐसी ही शोभा को निहार भक्तप्रवर सूरदासजी ने गाया-

देखो माई घन-घन अन्तर दामिनी।
घन दामिनी-दामिनी घन अन्तर शोभित हरि ब्रज भामिनी।
जमुना पुलिन मल्लिका मनोहर शरद् सुहाई जामिनी॥
रच्यो रास मिलि रसिक राई सों, मुदित भई गुन ग्रामिनी।
को गति गनै सूर मोहन सङ्ग काम विमोह्यो कामिनी॥

दो-दो गोपिकाओं के मध्य श्यामसुन्दर शोभायमान हो गये। श्रीकृष्ण, इच्छा मात्र से ही अनेक स्वरूप धारण कर सभी गोपिकाओं को सुख प्रदान करने लगे। इन्हीं यूथ समूहों के मध्य श्यामसुन्दर तथा उनकी प्राणाराध्या किशोरी राधा दोनों विराजमान हो गये। यमुना के सुरमणीय पुलिन पर शरद की उजियारी रात में अपनी प्राण-प्रिया श्रीराधा तथा उनकी कायव्यूह स्वरूपा इन बालाओं सहित रास रस गतिमान हो गया। इस दिव्य रसविहार को, अनंग विलास को देख मदन भी मोहित हो गया। रास रस माधुर्याम्बुधि के उफान को थामना कठिन हो गया। अङ्ग लाघवता, नृत्य की हिलोरों, से होड़ लेती रही-अनेकानेक गोपीवृन्द में। श्यामसुन्दर भी रस बरसाने लगे और यह ब्रज तरुणी वृन्द ताल, लय और और गति लेकर नृत्य निरत हो गईं- रस की अगाधता में तन्मय हो गईं। उसी रस रास की यत्किञ्चित् अभिव्यक्ति कर रसिक महानुभाव मग्न हो गए। उसी छवि का वर्णन कर रही हैं भक्तिमती ऊषा बहन जी-

नृत्य करत रस रस रसिक प्रिय,
श्रीयमुना के रजत पुलिन पर।
सखि मण्डल मँह प्रिया राधिका
गान करति मन मुग्ध मधुर स्वर॥
कबहुँ नृत्यत सखियन संग मिलि
सीस, सीस सों जोरि पकरि कर।
प्रिय संग लै तान नवीनी,
रंग बढ़वत मुरलि अधर धर।
मण्डल मधि आ लपटि प्रियासों

भाव प्रकासत अधिक सरस तर ।
भृकुटि विलास हास रस रञ्जन,
मधु मद भञ्जन प्रेम पुलक भर ॥
तान तरंगनि अंग अनंगनि,
रति रस रंगनि लगी सुरस झर ।
ठुमकत छूटत छूटीं कचलट,
झुकी चन्द्रिका, खुली मुकुट लर ॥

कहीं सुरीली तान ले प्रियाजी ने नृत्य निरत हो रास में धूम मचादी-

रास में रस बरसावे नागरी ।
जो गति लेत लाल मुरली सौं, नूपुर कुँवरि बजावे ।
अहा-अहा प्रीतम मुख वानी फैरि लेहु यह गावे ।
विद्या अखिल स्वामिनी राधा गति नौतन उपजावे ॥
बहुरि अलाप सप्त सुर लै के प्रिया ललकि सौं गावे ।
वृन्दावन हित रूप रीझि के नागर ग्रीव ढुरावे ॥

प्रियाजी ने रास में मनोहर नृत्य द्वारा अनेक रस कलाओं का प्रदर्शन किया, संगीत में मधुर अलाप ले आनन्द से वातावरण को और-और सरसा दिया, प्रियतम ने जो-जो स्वर मुरली में बजाये प्रियाजी ने नृत्य में उन्हीं स्वरों को नूपुर की झंकार में बद्ध कर दिया - प्रियाजी द्वारा सप्त सुरके अलाप को सुनकर प्रियतम प्रेम-विभोर हो गये । आनन्द में झूम प्रशंसा करने लगे ।

किसी नृत्य निरत गोपिका के पास जा प्रियतम नृत्य करने लगे, किसी अन्य बाला के साथ स्वर में स्वर मिला अलाप लेने लगे, किसी अन्या के पास जा बंक चितवन द्वारा उसे सुख प्रदान करते, किसी अन्या को अपने स्पर्श द्वारा, किसी का आँचल संवारने के मिस गुदगुदा, किसी के श्रम जल कण पोंछ किसी के कान में कुछ सुरस वार्ता कह, सभी बालाओं को भिन्न-भिन्न प्रकार से आनन्दित करने लगे । यह स्थली विभिन्न केलि-कलाओं से सरसता में भर गई ।

अपनी प्रियाओं को श्रमित जान, उन्हें ले, वे यमुना पुलिन पर आ गये । यह स्थल-केलि अब जल-केलि में परिणत हो गई । निकुञ्ज केलि की वे सभी चेष्टाएँ अब जल-केलि में अपनी चरम सीमा में गतिमान हो गईं । वे सब सखियाँ प्रियतम श्यामसुन्दर पर जल की बौछार करने लगीं, इधर यह प्रणयी भी अपनी कुशलता तथा चातुरी से सभी बालाओं को सरसाने लगे । कौन कह सकता है कि यमुनाजी को अपने अङ्ग स्पर्श द्वारा दिव्य रस प्रदान करने को ही प्रियतम श्रीयमुना में जल-क्रीड़ा करने लगे । इन केलि-कलाओं को देख अनंग भी परास्त हो गया ।

जिनके चरण-कमलों की रज का सेवन करने से भक्तजन पूर्ण काम हो जाते हैं, जिनके साथ मन का योग हो जाने मात्र से योगियों के कर्म-बन्धन कट जाते हैं, वे श्रीकृष्ण ही-

अनुग्रहाय भूतानां मानुषं देहमास्थितः ।
भजते तादृशीः क्रीडा या श्रुत्वा तत्परो भवेत् ॥

(श्रीमद्भागवत 10/33/37)

जीवों पर कृपा करने के लिए ही भगवान मनुष्य देह में प्रकट होकर वैसी ही लीलाएँ करते हैं जिन्हें सुनकर मनुष्य उन भगवान के परायण हो जाता है, इसमें किसी प्रकार की शङ्का नहीं करनी चाहिए । योगमाया से मोहित हो कर इस रहस्य को सिवा इन गोपिकाओं के कोई समझ न सका, भोर होते ही यह बालाएँ भगवान की इच्छा जान स्वयं ही अपने-अपने घरों को चली गईं-

विक्रीडितं ब्रजवधूभिरिदं च विष्णोः
श्रद्धान्वितोऽनुशृणुयादथ वर्णयेद्यः ।
भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं
हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः ॥

(श्रीमद्भागवत 10/33/40)

श्रीकृष्ण सहित प्रियाजी तथा उनकी निज स्वरूपभूता इन बालाओं की यह रहसि केलि, प्रेम की उच्चतम रसमयी चेष्टाओं का, श्रद्धापूर्वक श्रवण मात्र से समस्त पापों का शमन हो जाता है तथा हृदय के समस्त रोग सहज नष्ट हो जाते हैं । यह विशुद्ध काम संसार से उपरति कराने वाला है ।

रास-रमण की यह स्थली 'रमणरेती' नाम से विख्यात हो गई ।

दावानल कुण्ड

श्रीकृष्ण गोचारण हेतु श्रीयमुना तट पर पधारे । गउएँ चरती हुई गहन वन में प्रवेश कर गईं । ग्वारिया ढूँढ़ते हुए मुञ्जाटवी में दूर तक निकल गये । चारों ओर लगी अग्नि से भीत सखा, अपनी तथा अपनी गउओं की सुरक्षा हेतु श्रीकृष्ण से प्रार्थना करने लगे ।

श्रीकृष्ण ने सभी को नेत्र बन्द करने के लिए कहा तथा दावानल पान कर लिया । दावानल पान की यह स्थली 'दावानल कुण्ड' नाम से विख्यात हो गई । कदाचित् मुञ्जाटवी का विस्तार दावानल कुण्ड तक रहा होगा । आज भी यह कुण्ड श्रीकृष्ण द्वारा अपने जनों की रक्षा तथा अग्नि पान कर उनके कर्तुं, अकर्तुं, अन्यथा कर्तुम् चरित्र के गीत गा रहा है ।

ऐसी भी मान्यता है कि अपने सखाओं के साथ कन्हैया गोधन सहित ब्रज के लिए लौटने लगे। रास्ते में एक सरोवर दिखाई दिया। कन्हैया अपने सखाओं से बोले, "भैयाओ श्रीयमुना तटवर्ती यह सरोवर, सघन वृक्षावली से आवृत्त है इसका जल कितना स्वच्छ एवं निर्मल है। आओ हम यहाँ स्नान कर ब्रज के लिए प्रस्थान करेंगे। दावाग्नि पान कर श्रीकृष्ण के शरीर में ताप भी बढ़ गया था- अतः उन्होंने अपने सखाओं सहित इस सरोवर में स्नान किया। दावानल पान* करने के उपरान्त स्नान का यह स्थल 'दावानल कुण्ड' नाम से विख्यात हो गया।

टोपी वाली कुञ्ज

श्रीहरिव्यास देवाचार्यजी के बारह प्रधान शिष्यों में से अन्तिम शिष्य श्रीमुकुन्दजी हुए। बाल्यकाल से ही वे श्रीहरिव्यासदेवजी के प्रति दृढ़ निष्ठावान रहे।

इस गद्दी के सातवें महन्त हुए श्रीरामदासजी। वे टोपी लगाया रहते थे, इसी से यह स्थली 'टोपी कुञ्ज' के नाम से जानी गई।

श्रीमाधवादासजी यहाँ एक उच्च-कोटि के महात्मा हो गये हैं। वे श्रीभक्तमाल कहा करते थे। श्रीजगन्नाथ प्रसाद भक्तमाली प्रभृति अनेक महात्माओं ने भक्तमाल का अध्ययन इन्हीं से किया।

यहाँ एक प्राचीन रासमण्डल है, जहाँ सभी रास-मण्डलियों द्वारा बारी-बारी से नितप्रति रास का क्रम चलता रहता है।

माधव विलास

जयपुर नरेश श्रीमाधव सिंह जी द्वारा अपने गुरुदेव के आदेशानुसार इस मन्दिर का निर्माण करवा कर सं. १९८१ में स्थापना करवाई। यह निम्बार्क सम्प्रादाय का स्थान है। इसमें ठाकुरश्री नृत्यगोपाल, श्री राधा गोपाल तथा आचार्य पंचक ये तीन दर्शन है जो अपने जैसा अनूठा स्थान ही है।

भव्य इमारत पर कारीगरी का उत्कृष्ट नमूना है।

श्रीश्रीपाद बाबाजी महाराज

वृन्दावन की सांस्कृतिक भौगोलिक रिक्थ के वर्तमान युग में संरक्षक, पोषक यदि श्रद्धेय बाबा को कहा जाए तो अतिशयोक्ति न होगी। यह ऐसे दो ज्वलन्त

*नोट - दावानल पान का प्रसङ्ग मुञ्जाटवी के वर्णन में पृष्ठ २९४ पर आ चुका है।

विषय है जिसका भार वहन करने का सामर्थ्य पू. बाबा महाराज के अतिरिक्त किसी में न था। अध्यात्म की जिन चरम सीमाओं का अतापता पाने के लिये आजका साधक यत्र तत्र भटक रहा था उसे दिशा देने में पू. बाबा महाराज सक्षम थे। आप यदि किसी साधक की आध्यात्मिक पिपासा का शमन नहीं कर सकते तो उसे क्या कहें ? निकुञ्ज उपासना तथा नित्य विहार को अध्यात्म पटल पर लाने वाले महानुभावों का तो योगदान रहा ही इधर रसिकत्रयी की मान्यताओं को पूर्णतः समादर दे भारतवासियों के साथ साथ बाहर के लोगों को भी उन्होंने इस विषय से अवगत करा, प्रभावित किया। एक ही समय में कर्म और भक्ति की पूर्णता का अपूर्व सङ्गम और उसे ज्ञान की तलवार से तराश कर जो कार्य पू. बाबा ने किया उसे युग युगों तक अपने हृदयों पर अंकित रखना होगा।

उनका पूर्व का जीवन क्या था, वे कहाँ से सम्बन्धित रहे, कहाँ उनके माता-पिता रहे, उनका गुरु स्थान-सभी कुछ अटकलों पर आधारित है। फिर भी एक मान्यता अवश्य समान रूप से स्वीकार्य है कि उनका सम्बन्ध पन्ना राजपरिवार से अवश्य रहा है। मझे नहीं स्मरण मेरे लम्बे परिचय में कभी भी पू. बाबा ने अपने पूर्वाश्रम के विषय में कुछ कहा हो। संन्यास धर्म का सच्चाई से पालन करने वाला कोई महानुभाव, जिसने मुख फेरते ही, मुड़कर देखा ही नहीं, विरला सन्त शास्त्रीय मर्यादाओं में बद्ध तथा तपा हुआ स्वर्ण पू. बाबा के व्यक्तित्व से छलकता था।

उन्होंने ब्रजेश्वरी श्रीराधा रानी को ही गुरु रूप में स्वीकार किया। उनकी मधुर उपासना और लीला में अभिनिवेष के विषय में क्या कहूँ सभी सम्प्रदायों को समादर देते हुए भी-

नहिं बकुला नहीं बीज हैं, अद्भुत रस यह आई।
पावेगो सोई भैया, देहि हरिदासी जाहि ॥

श्रीहरिदासजी महाराज श्रीललिता जी के अवतार माने जाते हैं, नित्य विहार के आचार्य स्वामी श्रीहरिदासजी महाराज, रसिक भूषण महाप्रभु हरिवंश जी महाराज तथा हरिराम व्यास जी महाराज की भाव प्रवणता से समन्वय उन्होंने माना फिर भी अपनी भाव धारा को इयत्ता में बंधने नहीं दिया। भक्तिमती ऊषा बहन जी के विशाल तथा उदार दृष्टिकोण को देख उन्होंने कहा था,- "मेरा मत बहिन जी की अनेक बातों से मेल खाता है।" उनके त्याग और वैराग्य के विषय में कहा करते थे- "चाहे कितना भी ऐश्वर्य हो जावे, परन्तु त्यागी के प्रति जगत का सहज झुकाव होता है, और यही ब्रज की

रहनी की अभीप्सा भी है ।" एक स्थान पर वे कहते हैं 'जीवन में जिस आर्ष परम्परा को श्रेष्ठ गौरव प्राप्त हुआ है, इसका प्रारम्भ त्याग से ही हुआ है, और पर्यवसान सम्पूर्णता में बदल गया' ।

ज्ञान मार्ग का अनुसरण कर उन्होंने ध्यान योग तथा लीला चिन्तन में सतत अवगाहन किया, कर्म का क्षेत्र उनमें उसी पूर्णता को लेकर प्रति स्थापित हुआ । ब्रज की संस्कृति, पर्यावरण प्राचीन स्थलियों का अवैध उत्खनन भगवद् सेवा भाव से ही इन सबके संरक्षण में लगे रहे । लीला चिन्तन में निमग्न भक्ति की अजस्र रस धारा का प्रवाह उनके नेत्रों से बहते देख कर क्या कहूँ- ऐसे ही प्रसङ्गों को एक या दो बार नहीं बार बार सुन कर तन्मय, अनेक बार बिल्कुल समाधि अवस्था में अपने इन चर्म चक्षुओं से देख कर क्या लिखूँ । वे जहाँ थे उसी में पूर्ण दीखे ! वे एक ऐसा व्यक्तित्व थे जिसके विषय में बहुत कुछ कह कर भी उतना ही कहने के लिये शेष रह जाता है ।

भारतीय तथा ब्रज संस्कृति के प्रति वे समर्पित रहे, उनकी अभीप्सा थी कि विश्व में इस संस्कृति का प्रचार तथा प्रसार हो । इसी के उन्नयन हेतु शाश्वत भारती विश्व विद्यालय प्रकल्प के रूप में उन्हें प्रेरणा हुई, नन्दनन्दन की प्रिय गो संरक्षण की अनिवार्यता की ओर उनका ध्यान गया तथा यहाँ के सांस्कृतिक रिक्त के संरक्षण की सोच जगी ।

अब नित्य लीला में प्रवेश पाने के लिए उनका रोम-रोम तत्पर रहता था, अनेक बार शरीर त्याग देने की बात उन्होंने कही परन्तु अपनों से बिछुड़ने की कल्पना को जी नहीं करता । अतः विश्वास नहीं होता था जब उन्होंने दवा के प्रति पूरी उदासीनता दिखलाई तो किसी बहन से उन्होंने कहा था- 'अब जाना ही है । इस का पोषण करने से क्या होगा ।'

अपने संकल्पों को मूर्तरूप देने में सतत गतिशील पू. बाबा ने इहलौकिक लीला संवरण करते समय इन सब से भी मोह भंग कर लिया तथा ३१ दिसम्बर १९९६ को भगवान भुवन भास्कर को प्रणाम कर सदा सदा के लिये भौतिक चक्षुओं से ओझल हो गए ।

छलिया ठाकुर (श्रीश्री आनन्दमयी माँ)

जहाँ आज श्रीरामकृष्ण सेवाश्रम, चिकित्सालय है, इसी जमीन को आनन्दमयी माँ के आश्रम हेतु उनके अनुयायियों का, क्रय करने का विचार बना । उक्त जगह दिखलाने के लिए माँ को वहाँ ले गये । माँ ने कहा, "भैया ! हमने तो स्वप्न में जो स्थान देखा है वह यह नहीं है । उसमें एक विशेष वृक्ष के सामने मन्दिर भी बना था ।"

सामने वाला स्थान जहाँ आजकल माँ का आश्रम है, यह जमीन श्रीरामकृष्ण सेवाश्रम वालों ने क्रय कर ली थी। सेवाश्रम वालों को चिकित्सालय के लिए वह स्थान ठीक नहीं लगा। उनके लोगों ने माँ से निवेदन किया, "यदि आपको आपत्ति न हो तो वह जमीन उन्हें दे दें।"माँ को वर्तमान आश्रम वाला स्थान ही स्वप्न में दिखलाई दिया था। वह पेड़ भी वहीं यथावत था। माँ के आश्रम के लिए वर्तमान स्थान का ही निश्चय हो गया। वही स्थान माँ को दिखलाई दिया था।

भव्य मन्दिर का निर्माण किया गया। मूर्ति स्थापना का प्रश्न उठा। माँ से पूछा गया। उन्होंने जिन श्रीठाकुर स्वरूप का दर्शन स्वप्न में किया था-उसी मुद्रा में श्रीकृष्ण स्वरूप पधराने की बात कही। माँ के मन में एक पंक्ति स्वतः ही स्फुरित होने लगीं-

'छलिया, छलियो ना'

एक दिन राजमाता विजयराजे सिंधिया, माँ के पास आईं। बात-बात में प्रसङ्ग वश माँ से बोलीं, "मैंने ग्वालियर में एक भव्य मन्दिर बनवाया था। वहाँ स्थापना हेतु श्रीकृष्ण के अति सुन्दर श्रीविग्रह मँगवाये थे। वे त्रिभङ्ग मुद्रा में न होकर एक चरण आगे बढ़ा चलने को तैयार हो ऐसी मुद्रा में हैं, आप कहिये अब क्या किया जाये ?"

माँ ने तुरन्त कहा, "हमारे पास भेज दो।" श्रीठाकुर को देखकर माँ ने तुरन्त कहा, इसी मुद्रा में तो ठाकुर ने उन्हें पहले ही दर्शन दिये थे।

राजमाता से छल कर यह श्रीठाकुर स्वरूप यहाँ विराजने लगे-इसी से इन्हें छलिया ठाकुर नाम से सम्बोधित किया गया।

पहले से ही माँ गा रही थीं, "छलिया छलियो ना।"

श्रीश्रीराधाविनोद ठाकुर-(तरास वाला मन्दिर)

श्रीश्रीराधाविनोद ठाकुर की प्राकट्य सम्बन्धी वार्ता बड़ी ही मधुर तथा सरस है, उसे हम नीचे उद्धृत कर रहे हैं-

श्रीबाञ्छारामजी तरास स्टेट के अधिकारी थे। वे बड़े भक्त थे। वे नित्य ही नदी स्नान करते। एक बार कारतोया नदी में स्नान कर रहे थे तो उन्हें स्पष्ट सुनाई पड़ा कि, 'मुझे जल से निकाल लो तथा घर ले चलो।' परन्तु दिखाई कुछ न दिया। अगले दिन भी ऐसा ही हुआ और तीसरे दिन उन्हें लगा जैसे जल में उन्हें किसी वस्तु का स्पर्श हो रहा है। उन्होंने जब हाथ से उठाया तो जो श्रीविग्रह स्वरूप उन्हें प्राप्त हुए वे ही विनोद ठाकुर के नाम से विख्यात हुए।

श्रीठाकुरजी वहाँ से स्वेच्छा से श्रीवनमालीरायजी के घर पधारे तथा उनकी एकमात्र पुत्री को उन्होंने अपनी मधुर मुस्कान से मोहित कर लिया। विनोद ठाकुरजी उस राधा नाम की बालिका के साथ बहुत ही प्रत्यक्ष रूप में लीला करते रहे। एक दिन उस बालिका का आंचल पकड़ कर बोले, "मुझ से ब्याह कर ले।" इधर राधा बीमार हो गई और ठाकुर विनोदजी ने स्वप्न में माँ से कहा, राधा बचेगी नहीं। तुम्हारे बगीचे में जो देवदार का सूखा वृक्ष है उसकी लकड़ी से एक प्रतिमा बनाकर मेरे साथ ब्याह कर दो। ऐसा ही किया गया। जैसे ही वह प्रतिमा बनकर तैयार हुई कि राधा का शरीर छूट गया। इधर एक ओर राधा का दाह संस्कार हुआ और दूसरी ओर ठाकुरजी के साथ उस प्रतिमा की स्थापना हुई। श्रीविनोदविहारी ठाकुर अब श्रीराधाविनोद विहारी ठाकुर हो गये।

सन् १८९२ की बात है कि इन्हीं श्रीठाकुरजी ने पुजारी से तन्द्रा-सी में हुक्का लाने का आग्रह किया। श्रीवनमालीरायजी जैसे ही दर्शन हेतु पधारे तो पुजारी ने सारी बात उनसे कह दी। उन्होंने हुक्के की व्यवस्था तो कर दी पर उन्हें एक शङ्का बनी रही।

एक दिन श्रीजगद्बन्धुजी जब वहाँ पधारे तो उन्होंने श्रीवनमाली रायजी को विनोद ठाकुर के हुक्के की गड़-गड़ का शब्द सुनवाया, उसे सुन श्रीवनमालीरायजी की आस्था श्रीराधाविनोद ठाकुरजी में सुदृढ़ हो गई।

कुछ दिन बाद उन्हीं श्रीठाकुर स्वरूप को ले श्रीवनमाली बाबू ब्रज में चले आये। वे कुछ समय श्रीराधा-कुण्ड विराजते तथा कुछ समय श्रीवृन्दावन में।

बाल भक्त ओमप्रकाश

सन् १९२६ की बात है जयपुर के पास ही टोंक ग्राम में आपका जन्म हुआ। बाल्यकाल से भगवान के प्रति दृढ़ निष्ठा थी। उन्होंने हाईस्कूल परीक्षा पास की। श्रीवृन्दावन के प्रति भाव और, और सुदृढ़ होने लगा। अन्ततः आप श्रीवृन्दावन चले आये।

श्रीकृष्ण के प्रति अनुराग संसार के प्रति विरक्ति तथा नाम जप उनका अहर्निश चलने लगा।

एक दिन श्रीकृष्ण दर्शन के लिए दृढ़ निश्चय कर अनशन कर दिया। बानक कुछ ऐसा बनता रहा कि इनका अनशन चलता ही रहा। श्रीहरिबाबा, प्रभृति अनेक महज्जनों के कहने पर भी इनका व्रत दृढ़ रहा।

श्रीनारायण स्वामी के प्रति ओमप्रकाशजी गुरुबुद्धि रखते थे-वे दूध पिलाने के लिए आने वाले थे। ओमप्रकाश जी ने स्वीकार भी कर लिया कि यदि वे आज्ञा देंगे तो अवश्य ग्रहण करूँगा।

ओमप्रकाशजी के अनशन का आज ६९ वां दिन था। श्रीनारायण स्वामीजी दूध पिलाऐंगे, इस समाचार को सुन वृन्दावन के भावुक दर्शनार्थी यमुना तट पर विराजमान भक्त ओमप्रकाश के दर्शनार्थ जा पहुँचे।

जब तक सभी लोग वहाँ एकत्रित होते, श्रीओमप्रकाशजी की एहिक लीला समाप्त हो चुकी थी। अवश्य ही श्रीकृष्ण की झाँकी कर वे विभोर हो चुके थे। उनके इस हठ प्रधान चरित्र को प्रेमी भक्त अवश्य नहीं सराह सके। ब्रजभाव में तो प्रेम का ही सौदा है, जहाँ देना ही देना है।

काठिया बाबा आश्रम

मुंगेर वाले मन्दिर के सामने गुरुकुल मार्ग पर श्रीकाठिया बाबा का स्थान है। यहाँ अनेक उच्च-कोटि के महात्मा हो गये हैं।

कात्यायिनी पीठ

श्रीरङ्गजी के बगीचे के पास ही यह स्थली है। यहाँ कात्यायिनी देवी के दर्शन हैं।

यहाँ हाल ही में अपने चमत्कारों से अनेक भक्तों को आकर्षित कर स्वेच्छा से विराजे सिद्ध गणेशजी भव्य स्वरूप में विराजमान हैं।

वृन्दावन में निम्न अन्य स्थलियाँ भी दर्शनीय हैं-

श्रीरूप मनोहरजी, वर्द्धमान कुञ्ज, बरसानियाँ कुञ्ज, फौजदार कुञ्ज, जीवाराम कुञ्ज, महोत्तरावाली कुञ्ज, कानपुर वाली कुञ्ज, खाक चौक, टिकारी घाट, मदनमोहन कुञ्ज, श्रीहरिदेवजी का मन्दिर, ब्रह्मचारी मन्दिर, राधा बाग, श्रीसाधु माँ का मन्दिर, राधा निवास, मुंगेर मन्दिर, अटल वन, केवार वन, उड़िया बाबा आश्रम, श्रीहरिबाबा आश्रम, श्रीजुगलविहारी मन्दिर(जुगल घाट), श्रीयशोदानन्दनजी का मन्दिर, भ्रमर घाट, जुगल घाट, विहार घाट, गोविन्द घाट आदि।

अलौकिक नाम मन्दिर

कात्यायिनी पीठ के पास ही चार सम्प्रदाय के पीछे अलौकिक नाम मन्दिर है। यहाँ की विशेषता यह है कि श्रीठाकुर स्वरूपों के वपु पर नाम अंकित है। अखण्ड नाम संकीर्तन यहाँ की शोभा है। मन्दिर में स्वरूप सेवा अपनी सी अनोखी है। कहते हैं कि इस मन्दिर के संस्थापक महंत श्री रामेश्वरानंद जी को मन्दिर स्थापना की प्रेरणा हुई थी।

इस मन्दिर की प्रतिष्ठा बाबा श्रीपाद जी महाराज द्वारा हुई। यहाँ के प्रथम पुजारी द्वारा सेवा तथा श्रीठाकुर को लड़ाए लाड़ से स्वरूपों में विलक्षणता अवश्य आई है। पुजारी श्रीतुलसी दास एक उड़िया महात्मा थे। सभी के प्रति स्नेह और सौहार्द का स्वरूप, जो उनमें ईश्वर प्रदत्त था, ने उन्हें सभी में लोकप्रिय बना दिया था। ऐसे होनहार बालकों की आवश्यकता भगवान के यहाँ भी रहती है, गतवर्ष ही अपनी बहुत छोटी वय में अपनी स्मृति सभी के मन में छोड़ इस नश्वर संसार का परित्याग कर गए।

मदनमोहनजी

श्रीरघुनाथभट्ट गोस्वामीपाद के शिष्य थे श्रीगदाधरभट्टजी, उन्हीं के द्वारा यहाँ श्रीमदनमोहनजी की सेवा प्रारम्भ हुई। इन्हीं की परम्परा में श्रीगोवर्द्धनभट्टजी विशिष्ट विद्वान हो गये हैं।

श्रीठाकुरजी की सेवा तथा वसन्त एवं होली का समाज विशेषतः दर्शनीय रहा है।

दर्शनीय नवीन स्थलियाँ

गम्भीरा (भ्रमर घाट), वैजयन्ती (ज्ञानगुदड़ी) गोदाविहार, सुदामा कुटी, गोरे दाऊजी, श्रीकृष्ण-बलराम मन्दिर, नृत्यगोपाल मन्दिर, पागलबाबा मन्दिर, चार सम्प्रदाय आश्रम, चैतन्य कुटी, छत्तीसगढ़ कुञ्ज।

पीछे आप श्रीवृन्दावन की लीला-स्थलियों के विषय में पढ़ आये हैं, आईये अब आस-पास की लीलास्थलियों में विचरण कर वहाँ का आनन्द लें।

मांट गांव

मृत्तिका निर्मित वृहत् पात्र 'मांट' नाम।
माटोत्पत्ति प्रशस्त-ए हेतु माट ग्राम॥

(भ० र०)

मृत्तिका पात्र जिसका उपयोग जल भरने तथा दधि मन्थन आदि के लिए किया जाता है, मांट नाम से विख्यात है। आज भी ब्रज में मांट का प्रयोग प्रचुर मात्रा में होता है, प्राचीन समय में दूध- दधि हेतु बड़े-बड़े मांटों का प्रयोग होता था। वे यहीं बनते थे ऐसी मान्यता है। तभी से यह ग्राम मांटों के लिए प्रसिद्ध है।

भाण्डीर वन से २ मील दक्षिण में तथा वृन्दावन से लगभग पाँच मील की दूरी पर स्थित है।

मांट ग्राम में अनेक उच्च-कोटि के महात्मा हो चुके हैं। श्रीबैरु बाबा का चरित्र बड़ा ही चमत्कार पूर्ण है। ग्रामवासियों की सुरक्षा हेतु वे समय-असमय में प्रकट हो जाते थे।

श्रीस्नेहीरामजी अपने रसियाओं के लिए प्रसिद्ध हैं। वे नित्य ही श्रीबिहारीजी के दर्शन करके ही प्रसाद ग्रहण किया करते थे। उनकी मानसी सेवा सिद्ध थी। कहते हैं कि एक बार उनकी भाभी खाना ला रही थीं। बड़े भाई बिना भोग धरे ही पा लेंगे, इस भय से श्रीस्नेहीरामजी ने मानसिक भोग धराया। इनके बड़े भाई ने गुस्से में आ इन्हें बुरा-भला कहा तथा डण्डा उठा मारने को भागे। श्रीस्नेहीरामजी जो भोग श्रीठाकुरजी को मानसिक अर्पित कर रहे थे वह सब खेत में फैल गया। यहाँ तक कि इनकी भाभी के सिर पर धरा बर्तन भी खाली निकला। श्रीस्नेहीरामजी बड़े ही उच्च कोटि के भक्त थे।

बिल्ववन

तपः सिद्धि प्रदायैव नमो बिल्ववनाय च ।
जनार्दन नमस्तुभ्यं बिल्वेशाय नमोस्तु ते ॥

(भविष्योत्तर पुराण)

तपस्या सिद्धि प्रदान करने वाले हे बिल्ववन ! आपको नमस्कार है।

गोकुल में नित्य उत्पातों से पीड़ित होकर नन्दबाबा, उपनन्दजी आदि गोप श्रीवृन्दावन में आकर रहने लगे। श्रीकृष्ण-बलरामजी यहीं से, सखाओं सहित गैया चराने जाते। इन्हीं वृक्षों की सघन छाया में कन्हैया अपने ग्वाल-बाल सखाओं तथा गोधन सहित विश्राम करते, फलों का सेवन करते। सखाओं की मण्डली हास-विनोद में मग्न रहती। घने बिल्व-वनों की यह स्थली 'बिल्ववन' नाम से विख्यात हो गई।

श्रीलक्ष्मीजी की तपःस्थली

यहाँ श्रीलक्ष्मीजी का मन्दिर है। ऐसी मान्यता है कि श्रीलक्ष्मी जी की, भगवान श्रीकृष्ण की रासलीला दर्शन करने की प्रबल इच्छा हुई तो उन्होंने ब्रज के लिए प्रस्थान किया। रासलीला दर्शन अनन्य प्रेम की स्वरूपभूता, इन रमणी वृन्द की कृपा से ही सुलभ है। अतः श्रीलक्ष्मीजी को रास में प्रवेश सुलभ न हो सका। बहुत अनुनय-विनय करने पर ब्रजवास सुलभ हो सका। तपस्या करके अपने को धन्या करने हेतु श्रीलक्ष्मीजी आज भी ब्रज में वास कर रही हैं।

कस्यानुभावोऽस्य न देव विद्महे
तवाङ्घ्रि रेणु स्पर्शाधिकारः ।

यद्वाञ्छया श्रीर्ललनाऽऽचरत्तपो
विहाय कामान् सुचिरं धृतव्रता ॥[1]

(श्रीमद्भागवत)

श्रीवृन्दावन के उत्तर-पश्चिम कोण में श्रीयमुना के पार यह वन स्थित है। श्रीगोसांई विट्ठलनाथजी की बैठक है।

कृष्ण कुण्ड

बिल्ववने कृष्णकुण्डे जे करे स्नान ।
सर्व पापे मुक्त से परम भाग्यवान ॥

(भ० र०)

पास ही कृष्ण कुण्ड है। अपने नाम, गुण के अनुरूप ही, यहाँ स्नान करने वाले भक्तों को अपने प्रियतम श्रीकृष्ण की चरण भक्ति प्रदान कराने वाला है। बिल्ववन से लगभग एक मील की दूरी पर स्थित है।

मान सरोवर

छाँड़ि दै मानिनी मान मन धरिबौ ।
प्रणत सुन्दर सुघर, प्राणवल्लभ नवल,
वचन अधीन सों इतौं कत करिवो ।
जपत हरि विवस तव नाम प्रति पद विमल,
मनसि तव ध्यान ते निमिष नहिं टरिबो ॥

(हि० चौ 83)

नित्य रसकेलि-प्रिय श्रीकृष्ण और उन्हीं की आराध्या श्रीराधा निज स्वरूपभूता ब्रज-बालाओं सहित नित्य ही नये-नये रसायोजनों में रत रहते हैं। रस वर्धन के सभी उपक्रम समयानुसार प्रकट होते रहते हैं। संयोगावस्था का जहाँ एक ओर अपना ही सुख है-वहीं दूसरी ओर मान भी रस वर्धन हेतु प्रेम का अभिन्न अङ्ग है। कठिन मान तो इन ब्रज-सुन्दरियों को सुहाता ही नहीं। उनका मान तो प्रियतम के सुख हेतु ही है।

हाँ! तो सुन्दर सघन वृक्षावलियों से आवृत्त, स्वच्छ जल से परिपूर्ण सरोवर है यह। इसमें कमल तथा कुमुदिनियाँ अपना पराग न्यौछावर कर रही हैं। प्रणयी रिझवार और-और रसमग्न होते जा रहे हैं। पास ही बैठी प्रियाजी कभी कमल

1. नाग पत्नियों ने भगवान श्रीकृष्ण की स्तुति करते हुए कहा -
भगवन् हम नहीं समझ पाती कि यह इसकी (कालिय नाग) किस साधना का फल है, जो यह आपके चरणों की धूलि पाने का अधिकारी हुआ है। आपके चरणों की रज इतनी दुर्लभ है कि उसके लिये आपकी अर्द्धाङ्गिनी श्रीलक्ष्मीजी को भी बहुत दिनों तक समस्त भोगों का त्याग करके नियमों का पालन करते हुए तपस्या करनी पड़ी थी।

पुष्प उठा, उसे इकटक निरख रही हैं-और कभी जल में अपनी करांगुलियों से कुछ बनाने का प्रयास-सा कर रही हैं। ऐसे में जाने किस स्मृति में वे खो-सी गईं। वातावरण स्तब्ध-सा हो गया। मुख पर आई तरङ्ग मालाओं में किञ्चित् गाम्भीर्य का सम्मिश्रण देख सभी शान्त हो गया। इधर रस में कुछ बाधा आई देख प्रियतम चौंक गये। प्रियाजी किञ्चित् गम्भीर मुद्रा में ही बोलीं, "वही आपकी प्रेम पात्री होती है तो होने दो। उसी के साथ रमण करने पर ही तुम्हें सुख होगा, यह भी मैं समझ गई हूँ। मुख से कपट पूर्ण बातें बनाने से क्या प्रयोजन ? हे प्रियतम ! मैं तो आपके सुख में ही सुखी हूँ। ऐसा जानकर आप वहीं पधारें। आपका तो किञ्चिन्मात्र भी दोष नहीं है-विधाता ही प्रतिकूल दीख रहा है।" ऐसा कह किशोरी श्रीराधा थोड़ा सरक गईं।

प्रणयी चतुर नन्दनन्दन किञ्चित् गम्भीर होकर बोले, "प्रिये ! मैं तो सर्वथा तुम्हारे अधीन रहता हूँ। तुम्हारी मुस्कान जाल के, केश पाश के, मधुर नूपुर झङ्कार के, रूप सौन्दर्य में उठती अनगिन रस लहरियों के और क्या कहूँ, तुम्हारी समस्त शोभा श्री ने मुझे तुम्हारा अनुचर ही बना रखा है और एक तुम हो... जो छोटी-छोटी बातों पर तुनक जाती हो।" इतने पर भी प्रियाजी गम्भीर ही रहीं। प्रियतम ने पुनः कहा, "अच्छा तुम यों करोगी तो मैं", बस यह सुनते ही प्रियाजी अधिक चुप न रह सकीं। वे तो पहले ही द्रवित हो चुकी थीं। उन्होंने किञ्चित् मुस्कराकर प्रियतम की ओर देखा। अब क्या था- मान जाता रहा। रस समुद्र में ज्वार-भाटा उमड़ पड़ा। यह तरङ्गें रूप राशि के अथाह सिन्धु में ही विश्राम पाकर सुस्थिर हुईं। सखीवृन्द रसकेलि में निमग्न हुई प्रणय बेसुधि में खो- सी गईं। और यह ब्रज सुन्दर अपनी विजय दुन्दुभी बजा, मदनकेलि में रत हो गये।

इन्हीं रसमयी स्मृतियों से स्पृष्ट यह स्थली आज भी अपनी रसीली चेष्टाओं की गाथा दोहरा रही है।

सरोवर के पास ही, श्रीमन्महाप्रभु वल्लभाचार्यजी तथा गुसांई विट्ठलनाथजी की बैठक है।

श्रीहित-हरिवंशजी महाराज की भी इस स्थली के प्रति विशेष आसक्ति थी। वास्तव में उन्हीं के अनुग्रह से इस स्थली का प्रचार-प्रसार हुआ।

श्रीयमुनाजी के पार लगभग दो मील की दूरी पर है। श्रीहरिवंशजी महाराज की साधना स्थली रही है। इस समय यहाँ श्रीजी की नाम सेवा तथा रासमण्डल दर्शनीय हैं। श्रीहित प्रभु के वृन्दावन आगमन की स्मृति में फाल्गुन कृष्णा एकादशी को यहाँ उत्सव मनाया जाता है।

पानी गाँव

मान सरोवर से दो मील दक्षिण की ओर स्थित है। यहाँ दुर्वासा ऋषि का आश्रम है। श्रीकृष्ण की लीला प्रकट के समय गोपिकाओं ने श्रीदुर्वासा ऋषि को भोजन करा, श्रीकृष्ण चरणों में अपनी प्रीति की प्रगाढ़ता हो, ऐसी याचना की थी। गोपिकाओं ने अपनी मनःकामना पूर्ति हेतु भोजन कराने की तैयारी की तो श्रीयमुना उस समय जल से परिपूर्ण थीं। उस पार जाना अत्यन्त कठिन हो गया। गोपिकाओं ने श्रीकृष्ण से उस पार जाने का उपाय पूछा तो उन्होंने कहा- 'अपने इष्ट का ध्यान कर तुम लोग श्रीयमुना से कहना यदि श्रीकृष्ण पूर्ण ब्रह्मचारी हैं तो हमें मार्ग दे दो।' जब गोपिकाऐं श्रीयमुना तट पर आईं तो उन्होंने यही वाक्य दोहरा दिया-श्रीयमुनाजी ने अपने बीच से रास्ता छोड़ दिया और गोपिकाऐं पार चली गईं।

दूसरे तट पर जाकर उन्होंने अनेक पकवान बनाये और श्रीदुर्वासा ऋषि की सेवा में ले जाकर समर्पित कर दिये। ऋषि ने उन सुस्वादु पदार्थों को बहुत ही आनन्द पूर्वक ग्रहण किया। 'श्रीकृष्ण चरणों में प्रगाढ़ प्रीति हो', ऐसा आशीर्वाद प्राप्त कर तथा श्रीदुर्वासा ऋषि को प्रसन्न कर जब गोपिकाऐं लौटने के लिए श्रीयमुना तट पर आईं तो भी श्रीयमुनाजी में उत्तुङ्ग हिलोरें उठ रही थीं। गोपिकाओं ने श्रीदुर्वासाजी से लौटने का उपाय जानने की प्रार्थना की। दुर्वासाजी ने कहा कि तुम लोग जाओ और श्रीयमुना से कहना- 'हे यमुने! यदि दुर्वासा ऋषि ने अभी तक कुछ भी न ग्रहण किया हो तो हमें उस पार जाने के लिए मार्ग दे दें।' वे बड़े विस्मय में पड़ गईं। लौटना तो था ही उन्होंने श्रीयमुनाजी से निवेदन किया-

'हे श्रीयमुने! यदि श्रीदुर्वासा जी ने अभी तक कुछ भी ग्रहण न किया हो तो कृपामयि! हमें मार्ग दे दें।' इतना कहते ही श्रीयमुना ने मार्ग दे दिया और गोपिकाऐं पैदल चलकर स्वगृहों को लौट आईं।

इन्हें इन दोनों घटनाओं को देख अत्यन्त आश्चर्य हुआ और उन्होंने श्रीकृष्ण से इस रहस्य को जानने की जिज्ञासा प्रकट की। श्रीकृष्ण ने कहा, 'मेरी प्यारी गोपियों! तुम अत्यन्त भोली हो। तुम्हारी मुझ में अत्यन्त प्रीति है। मैं दिन-रात तुम सबके साथ रहने पर भी अखण्ड ब्रह्मचारी हूँ-क्योंकि किसी भी वस्तु का ग्रहण मन के द्वारा होता है मैं जितेन्द्रिय हूँ, अतः मेरी बिना इच्छा के मेरा मन किसी भी वस्तु का स्पर्श नहीं करता इसी से मैं अखण्ड ब्रह्मचारी कहलाता हूँ। ऐसी ही बात श्रीदुर्वासा ऋषि के बारे में विख्यात है। वे वस्तु

को बिना स्वाद के ग्रहण करते हैं। जिससे उनका मन उसमें आसक्त नहीं होता-अतः इसी से वे ग्रहण करने पर भी उसके स्पर्श दोष से मुक्त रहते हैं।

अपनी इन स्मृतियों को दोहराती यह स्थली आज भी हमारा पथ प्रदर्शन कर रही है।

अक्रूर घाट

अक्रूरस्तावुपामन्त्रय निवेश्य च रथोपरि ।
कालिन्द्या ह्रदमागत्य स्नानं विधिवदाचरत् ॥
निमज्ज्य तस्मिन् सलिले जपन् ब्रह्मसनातनम् ।
तावेव ददृशेऽक्रूरो रामकृष्णौ समन्वितौ ॥[1]

(श्रीमद्भागवत 10/39/40-41)

अरिष्टासुर का वध हो जाने पर भी कंस का मृत्यु भय कम न हुआ। उसे रात-दिन अपना काल सामने दिखलाई देने लगा। उसने अक्रूरजी को बुलवाकर श्रीकृष्ण-बलराम, दोनों भैया तथा श्रीनन्द आदि गोपों को बुलाने का नया उपक्रम किया। श्रीअक्रूरजी ब्रज में श्रीनन्दजी के यहाँ पहुँचे। मैया यशोदा तथा श्रीनन्दबाबा की आशङ्का बढ़ गई; उन्हें अत्यन्त कष्ट हुआ। यह सब वृत्तान्त जानने के बाद ब्रजवासी-गण तो मृतक के समान ही हो गये। फिर भी उन्हें ढाढ़स रहा। कन्हैया अत्यन्त बलवान है। अपना कार्य शीघ्र ही पूर्ण कर लेगा।

इधर ब्रज की भोली-भाली ग्वालिनियों के कष्ट का वर्णन कौन करता। यह हृदय विदारक समाचार सहन करने में असमर्थ वे बालाऐं मूर्छित हो गईं। कोई सत्प्रेमी ही इस सबका अनुभव कर सकता है। चातक से पूछो जो स्वाति नक्षत्र की एक बूंद की बाट जोहता, गङ्गाजल पान करने को भी तैयार नहीं, चकोर से पूछो जो चन्द्रमा के खण्ड समझ अङ्गारों का पान कर जाता है, अथवा सारस से पूछो जो क्षण भर भी वियोग सहन नहीं कर सकता अथवा पूछो उस चकवे से जो नित्य वियोगाग्नि में तप्त होने पर भी किसी सुनहरी भोर की प्रतीक्षा में प्राण धारण किये रहता है।

गोपिकाओं के कष्ट की सीमा न थी। उनमें कुछ मूर्च्छित हो गईं, कुछ मर्यादा को तिलाञ्जलि दे रथ के आगे ही लेट गईं।

सभी के प्राणों के प्राण, नन्दनंदन को ले रथ चल पड़ा। टकटकी बाँधे

1. अक्रूरजी ने दोनों भाईयों को रथ पर बैठाकर आज्ञा ली और यमुनाजी के कुण्ड ब्रह्महृद पर आकर विधिपूर्वक स्नान करने लगे। उस कुण्ड में स्नान करने बाद जब वे गायत्री जप करने लगे, उन्होंने जल के भीतर श्रीकृष्ण तथा बलराम दोनों भाईयों को देखा।

उस रथ की ओर सभी देखते रहे । धीरे-धीरे रथ नेत्रों से ओझल हो गया । धूलि दीखनी भी बन्द हो गई ।

वायु वेग वाले उस रथ पर बैठ श्रीकृष्ण-बलराम पापनाशिनी श्रीयमुनाजी के तट पर जा पहुँचे । अक्रूरजी ने स्नान आदि किया । जब उन्होंने जल में डुबकी लगाई तो श्रीकृष्ण और बलराम दोनों ही भाईयों को जल में बैठे देखा । भ्रम समझ जब बाहर मुख निकाला तो दोनों भाई उन्हें रथ पर आसीन दिखलाई दिये । यह सब देख वे आश्चर्य चकित रह गये । जल में उनकी कदाचित् कल्पना ही हो, ऐसा विचार कर जब उन्होंने पुनः डुबकी लगाई तो वे स्तब्ध रह गये । उन्होंने देखा अनन्त देव शेषजी विराजमान हैं । उनके सहस्र मुख हैं । वहीं शेष शैय्या पर श्याम मेघ के समान घनश्याम विराजमान हैं । सुन्दर भौंहें, सुघड़ नासिका, लाल कपोल सभी अद्वितीय शोभा का प्रसार कर रहे हैं ।[1]

अक्रूरजी ने भगवान की स्तुति की-

नमस्ते वासुदेवाय नमः सङ्कर्षणाय च ।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः ॥

(श्रीमद्भागवत 10/40/21)

वैष्णवजनों तथा यदुवंशियों का पालन-पोषण करने के लिए ही आपने अपने को वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध इस चतुर्व्यूह के रूप में प्रकट किया है । मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ ।

यह स्थली अक्रूर घाट के नाम से प्रसिद्ध हो गई । श्रीश्रीमन्महाप्रभु चैतन्यदेव जिस समय ब्रज दर्शन हेतु पधारे तो उन्होंने यहीं निवास किया । पास ही ग्राम से भिक्षा कर लाते थे । पास ही यज्ञस्थल है ।

यज्ञ स्थल

प्रयात देवयजनं ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनः ।
सत्रमाङ्गिरसं नामह्यासते स्वर्गकाम्यया ॥

(श्रीमद्भागवत 10/23/3)

गोचारण में आये ग्वाल-बाल अपने लाड़ले कन्हैया तथा बलराम जी के शौर्य की प्रशंसा करने लगे, उन्हें भूख लगी है, कहने लगे । ब्राह्मण पत्नियों पर कृपा करने के लिए श्रीकृष्ण ने बालकों से कहा, "तुम लोग जाओ और पास ही आंगिरस यज्ञ कर रहे ब्राह्मणों से हमारा नाम लेकर कुछ खाद्य सामग्री ले

1. रसिकों ने माधुर्य स्वरूप से नन्दनन्दन का ब्रज से बाहर जाना स्वीकार नहीं किया ।

आओ। ग्वाल बालकों ने ऐसा ही किया। स्वर्ग प्राप्ति की कामना में लगे उन ब्राह्मणों ने श्रीकृष्ण को केवल साधारण मनुष्य ही जान इस पर ध्यान न दिया। उन ग्वाल बालकों ने यह सारा वृत्तान्त श्रीकृष्ण से कह सुनाया।

अपने प्रिय मित्रों को समझाते हुए श्रीकृष्ण ने पुनः उन ब्राह्मणों की पत्नियों के पास जाने के लिए कहा। सखाओं ने ब्राह्मण-पत्नियों से पूर्ववत् सारी बात कही तथा भोजन माँगा। ब्राह्मण-पत्नियाँ तो पहले ही श्रीकृष्ण की मधुर लीलाओं को सुन-सुनकर उनकी अङ्ग-माधुरी का बखान कर अपना चित्त उन्हें समर्पित कर चुकी थीं, अतः उन स्त्रियों ने अपने पति-बन्धु-बान्धवों के विरोध करने पर भी सुन्दर-सुन्दर खाद्य-पदार्थ सजाये और लेकर स्वयं ही अपने प्रियतम श्रीकृष्ण की सेवा में चल दीं।

ब्राह्मण-पत्नियों ने यमुना पुलिनवर्ती अशोक वन में श्रीकृष्ण, बलराम तथा ग्वाल-बालकों को देखा। श्रीकृष्ण का श्यामल सुभग शरीर, पीत पट की आभा से और और सुन्दर प्रतीत हो रहा था, मस्तक पर सुशोभित मुकुट में मयूर पिच्छ अपनी विजय पताका फहरा रहा था। अङ्ग-प्रत्यंग पर सुन्दर चित्रकारी हुई थी। एक हाथ अपने सखा के स्कन्ध पर रखे-वे अत्यन्त मनोहर लग रहे थे। उनकी वह छवि सहज ही मन का अपहरण किये ले रही थी। मुख कमल पर मन्द-मन्द मुस्कान रश्मियाँ प्रणय-पाश का काम कर ही थीं।

श्रीकृष्ण ने उन ब्राह्मण पत्नियों की प्रेमा भक्ति देख, सत्कारपूर्वक उनसे कहा, "तुम्हारा मुझ में अपूर्व अनुराग है। इसी से अपने बन्धु-बान्धवों की परवाह किये बिना यहाँ मेरे पास आयी हो। तुम्हारा शुद्ध तथा सत्वमय प्रेम मुझ में है। तुम्हारी बहुत दिनों से मेरे दर्शनों की अभिलाषा थी- अब वह पूर्ण हुई, तुम अब लौट जाओ और अपने पतियों के यज्ञ की पूर्णता में सहायता करो।"

ब्राह्मण-पत्नियाँ सर्वथा ही श्रीकृष्ण की शरण में आ चुकी थीं। अपनी बात कह वे श्रीकृष्ण चरणों की सन्निधि में रहने का आग्रह करने लगीं- क्योंकि उनके पति एवं बन्धु-बान्धव अब उन्हें स्वीकार नहीं करेंगे। अतः अब उनके पास अन्य कोई रास्ता ही नहीं था। हे नाथ! अब आप ही हमारी गति हैं- हमें अपनी शरण में रखें।"

श्रीकृष्ण ने कहा, "तुम्हारे पति, पिता तथा अन्य बन्धु-बान्धव कोई भी तुम्हारा तिरस्कार नहीं करेंगे, क्योंकि तुम मेरी हो गयी हो। देवियों! इस संसार में मेरा अङ्ग-संग ही प्रीति का कारण नहीं है, मेरे परायण हुई तुम अपने घर लौट जाओ।" सभी ब्राह्मण-पत्नियाँ यज्ञशाला को लौट गईं। ब्राह्मणों ने कोई किसी भी प्रकार की आशंका नहीं की।

बाद में ब्राह्मणों को अपने कृत्य पर बुहत पश्चात्ताप हुआ ।

श्रीकृष्ण ने ग्वाल-मण्डली सहित भोजन किया । वही स्थली, यज्ञ-स्थली, भोज स्थली भतरोड़ नाम से आज भी उसी गाथा को दोहरा रही है ।

छटीकरा (गरुड़ गोविन्द)

शकटारोहनं नाम तस्मिन् क्षेत्रं परं मम ।
मथुरा पश्चिमे भागे अदूरादर्धयोजने ।

(आ० व०)

मथुरा के पश्चिम में यह स्थान स्थित है ।

गोकुल से श्रीनन्दरायजी जब वृन्दावन के लिए आये तो इस स्थल पर भी ठहरे, अपनी गाड़ियों को यहाँ खड़ा किया । गोविन्द कुण्ड के एक ओर बना मन्दिर 'श्रीगरुड़ गोविन्द' नाम से आज भी ब्रजवासियों के लिए अत्यन्त श्रद्धा का केन्द्र है । इस मन्दिर के लिए एक उक्ति प्रसिद्ध है -

'आठ हाथ को मन्दिर और बारह हाथ को ठाकुर ।'

गोविन्द भगवान की बारह भुजी मूर्ति दर्शनीय है । प्राचीन तथा सिद्ध श्रीविग्रह हैं ।

यह गाँव श्रीवृन्दावन से लगभग पाँच मील की दूरी पर स्थित है ।

सहायक ग्रन्थ सूची

संस्कृत

1. अग्नि पुराण
2. आदित्य पुराण
3. आदि वाराह पुराण
4. कूर्म पुराण
5. कृष्ण कर्णामृत
6. कृष्ण स्तवराज
7. गर्ग संहिता
8. गिरिराज माहात्म्य
9. गीत गोविन्द
10. गोपाल तापिनी
11. गोपाल चम्पू
12. गोपाल देवाष्टक
13. गोविन्द लीलामृत
14. गोवर्द्धन शतक
15. गौरी तन्त्र
16. तैत्तरीय संहिता
17. देवी पुराण
18. नव विज्ञप्ति
19. नारद पांचरात्र
20. निम्बार्क स्तोत्र संग्रह
21. निरोध लक्षणम्
22. नैमिषखण्ड में वर्णित सहस्र नामावली
23. पंचस्तवी
24. पद्म पुराण
25. पद्यावली
26. पुराण संहिता
26. प्रबोध सुधाकर
28. ब्रजभक्ति विलास
29. ब्रह्माण्ड पुराण
30. ब्रह्मवैवर्त पुराण
31. ब्रह्मयामल
32. भक्ति रसामृत सिंधु
33. भविष्य पुराण
34. मत्स्य पुराण
35. मथुरा माहात्म्य
36. मुक्ता चरित्र
37. मुरारिदास कृत चै०च०
38. राधासुधा निधि
39. राधा-रस मंजरी
40. रुद्रयामल
41. वल्लभ दिग्विजय
42. वल्लभाचार्य जी के ग्रंथ
43. वायु पुराण
44. विष्णुयामल
45. विष्णु धर्मोत्तरे
46. वृन्दावन महिमामृत
47. वृहन्नारदीय पुराण
48. वृहत्पाराशर
49. वृहत्यौतमीय तन्त्र
50. सहस्र गीतिसार
51. सम्मोहन तन्त्र
52. स्तवावली
53. स्कन्द पुराण
54. सौर पुराण
55. यमुनास्तुति (श्रीशंकराचार्यजी)
56. यमुनाष्टक (हरिवंश जी)
57. यमुनाष्टक (वल्लभाचार्यजी)
58. भक्ति सूत्र

हिन्दी

1. अष्छाप परिचय
2. अष्ट सखा भक्तमाल
3. कृष्णदास जी का चरित्र
4. कुम्भनदास जी का चरित्र
5. गोकुलदास जी की निज वार्ता
6. गोविन्द स्वामी पदावलि
7. चतुर्भुजदास चरित्र
8. छीत स्वामी चरित्र
9. नन्ददास ग्रन्थावलि
10. निम्बार्क माधुरी सार
11. परमानन्द सागर
12. पुष्टिमार्गीय सुधा (पत्रिका)
13. ब्रज मण्डल दर्शन
14. ब्रज के भक्त
15. ब्रज के धर्म-सम्प्रदाय
16. ब्रज परिचय
17. ब्रज परिक्रमा
18. श्रीनाथ जी प्राकट्य
19. ब्रज विभव की अपूर्व श्रीभक्तिमती ऊषा बहनजी
20. ब्रजस्थ वल्लभ सम्प्रदायका इतिहास

ब्रज भाषा

1. एक महात्मा की वाणी
2. केलिमाल
3. चौरासी वैष्णव वार्ता
4. दो सौ बावन वैष्णव वार्ता
5. नागरीदासजी की वाणी
6. नारायण स्वामी पद संग्रह
7. ब्रज वर्णन
8. बयालीस लीला
9. ब्रज विलास
10. बावरी सखी के पद
11. भ्रमर गीत
12. महावाणी
13. रसखान के पद
14. रसिकदेवजी का चरित्र
15. ललित माधुरी पद संग्रह
16. लोक गीत
17. वृन्दावनदास (चाचा) के पद
18. सूरदास मदन मोहन जी की वाणी
19. हित चौरासी
20. ललिताकिशोरी देव जी की जीवनी

बंगला

1. भक्ति रत्नाकर
2. चैतन्य चरितामृत

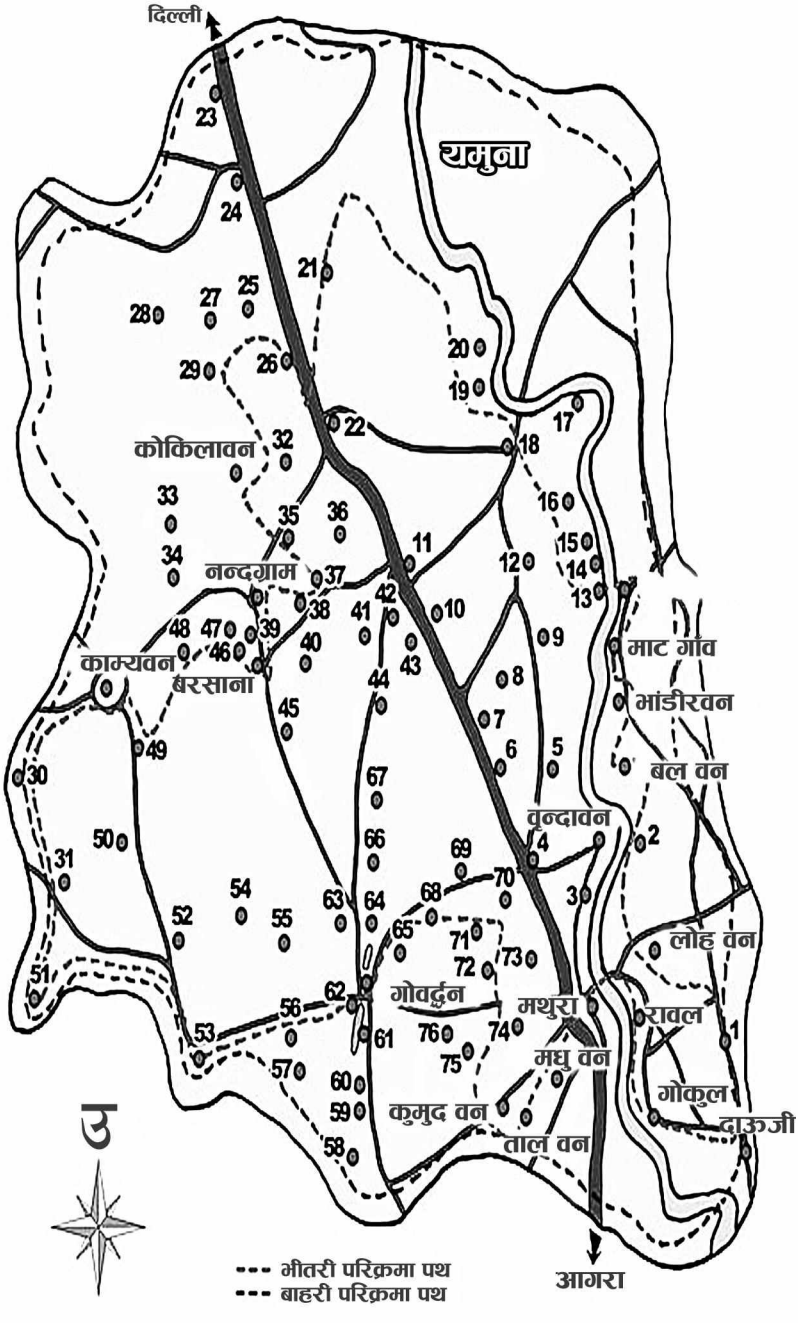
दिल्ली
यमुना
कोकिलावन
नन्दगाम
बरसाना
काम्यवन
माट गाँव
भांडीरवन
बल वन
वृन्दावन
लोह वन
रावल
गोकुल
दाऊजी
मधु वन
कुमुद वन
ताल वन
गोवर्द्धन
मथुरा
आगरा
उ
--- भीतरी परिक्रमा पथ
--- बाहरी परिक्रमा पथ

श्री ब्रज मण्डल

१. बन्दी
२. पानी गाँव
३. अक्रूर घाट
४. छटीकरा
५. आटस
६. जैंत
७. चौमुहा
८. पसौली
९. सेई
१०. स्यामती
११. छाता
१२. अगियार
१३. नन्द घाट
१४. चीर घाट
१५. तपोवन
१६. अक्षय वट
१७. राम घाट
१८. खेलन वन
१९. ऊजानी
२०. रामपुर
२१. शेषशायी
२२. कोसी
२३. बनचारी
२४. होडल
२५. चरण पहाड़ी
२६. कोटवन
२७. लालपुर
२८. बिछोर
२९. कामर
३०. केदारनाथ
३१. पसपा
३२. बठैन
३३. संचौली
३४. महराना
३५. जावट
३६. धनसिंगा
३७. खायरो
३८. बिजवारि
३९. संकेत
४०. करहला
४१. उमराव
४२. रनबाड़ी
४३. नरी
४४. साहार
४५. कामेई
४६. ऊँचागाम
४७. रीठौरा
४८. सुनहरा
४९. इन्द्रौली
५०. सेउ
५१. आदिबद्री
५२. परमदरा
५३. डीग
५४. मुनिशीर्ष
५५. देवशीर्ष
५६. गांठौली
५७. पूंछरी
५८. बच्छगाँव
५९. पैंठा
६०. पारासौली
६१. आन्यौर
६२. जतीपुरा
६३. नीमगाँव
६४. राधा कुण्ड
६५. मुखराई
६६. कुन्जेरा
६७. सूर्य कुण्ड
६८. बसोंति
६९. राल
७०. बहुलावन
७१. तोषग्राम
७२. दतिया
७३. गणेशरा
७४. शान्तनु कुण्ड
७५. माधुरी कुण्ड
७६. अड़ींग

ब्रजनिधि प्रकाशन के अन्य ग्रन्थ

१. ब्रज विभव की अपूर्व श्री भक्तिमती ऊषा बहनजी-बृहच्चरित
२. भगवान निम्बार्क प्रणीत प्रातःस्तव
३. लीला रस माधुरी
४. ब्रज विभव की अपूर्व श्री भक्तिमती ऊषा बहनजी-संक्षिप्त परिचय
५. मधु रस निर्झर (प्रथम भाग)
६. मधु रस निर्झर (द्वितीय भाग)
७. मधु रस निर्झर (तृतीय भाग)
८. श्री राधा सुधा निधि
९. स्प्लेंडर अफ वृन्दावन
१०. वेदवाणी
११. जीवन तथ्य
१२. लीला रस तरंगिनी (प्रथम भाग)
१३. लीला रस तरंगिनी (द्वितीय भाग)
१४. लीला रस तरंगिनी (तृतीय भाग)
१५. लीला रस तरंगिनी (चतुर्थ भाग)
१६. लीला रस तरंगिनी (पंचम भाग)
१७. प्रेम पियूष धारा
१८. प्रेम सुधा धारा
१९. श्री कृष्ण आलोक
२०. श्री कृष्ण कर्णामृतम-टीका सहित
२१. साधना और सिद्धि
२२. ब्रज भूमि मोहिनी (अंग्रेजी)